गुणधर आचार्य के मुखकमल से निकली हुई उन एक सौ अस्सी गाथाओं के अर्थ को अच्छी तरह सुनकर उन पर चूर्णिसूत्रों की रचना की।''

वीरसेन स्वामी के इन वचनों से ज्ञात होता है कि यतिवृषभ, आर्य मंक्षु और नागहस्ती के समकालीन थे तथा ये दोनों आचार्य, गुणधराचार्य के पश्चात् कई आचार्यों के हो जाने के बाद हुए थे।

श्वेताम्बर-परम्परा में भी **आर्यमंगु** और **आर्यनागहस्ती** के नाम उपलब्ध होते हैं, किन्तु वे समकालीन नहीं थे। उनके कालवैषम्य पर प्रकाश डालते हुए सिद्धान्ताचार्य **पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री** लिखते हैं—

''**नन्दिसूत्र** में आर्यमंगु के पश्चात् **आर्यनन्दिल** को स्मरण किया गया है और उनके पश्चात् नागहस्ती को। नन्दिसूत्र की चूर्णि और **हरिभद्र** की **नन्दिवृत्ति** में भी यही क्रम पाया जाता है। तथा दोनों में आर्यमंगु का शिष्य आर्यनन्दिल को और आर्यनन्दिल का शिष्य नागहस्ती को बतलाया है। इससे नागहस्ती आर्यमंगु के प्रशिष्य अवगत होते हैं। किन्तु मुनि **कल्याणविजय** जी का कहना है कि आर्यमंगु और आर्यनन्दिल के बीच में चार आचार्य और हो गये हैं और नन्दिसूत्र में उनसे सम्बद्ध दो गाथाएँ छूट गई हैं, जो अन्यत्र मिलती हैं। अपने इस कथन के समर्थन में उनका कहना है कि आर्यमंगु का युगप्रधानत्व वीर नि० ४५१ से ४७० तक था। परन्तु आर्यनन्दिल **आर्यरक्षित** के पश्चात् हुए थे और आर्यरक्षित का स्वर्गवास वी० नि० सं० ५९७ में हुआ था। इसलिए आर्यनन्दिल वी० नि० सं० ५९७ के पश्चात् हुए थे। इस तरह मुनि जी की कालगणना के अनुसार आर्यमंगु और आर्यनन्दिल के मध्य में १२७ वर्ष का अन्तराल है। और उसमें आर्यनन्दिल का समय और जोड़ देने पर आर्यमंगु और नागहस्ती के बीच में १५० वर्ष के लगभग अन्तर बैठता है। मुनि कल्याणविजय जी के अनुसार आर्यमंगु और नागहस्ती समकालीन नहीं हो सकते।''(जै.सा.इ./भा.१/पृ.१३-१४)।

यतः आर्यमंगु का आचार्यकाल वी० नि० सं० ४५१ से ४७० तक अर्थात् ई० पू० ७६ से ई० पू० ५७ तक था तथा आर्यनागहस्ती ने उनसे १५० वर्ष बाद आचार्य पद ग्रहण किया था, इसलिए वे ईसोत्तर ९३ के लगभग विद्यमान थे। इस प्रकार चूँकि वे दोनों समकालीन नहीं थे, इसलिए यतिवृषभ श्वेताम्बरपरम्परा के आर्यमंगु और नागहस्ती के अन्तेवासी नहीं हो सकते, न ही श्वेताम्बरसाहित्य में ऐसा उल्लेख है कि यतिवृषभ ने उनके पादमूल में बैठकर **कसायपाहुड** का श्रवण किया था। अतः वीरसेन स्वामी द्वारा उल्लिखित **आर्यमंक्षु** और **नागहस्ती** उनसे भिन्न थे। वे दिगम्बर-परम्परा में ही उत्पन्न हुए थे। (देखिये, आगे अध्याय १२/प्रकरण ३/शीर्षक ४)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तिलोयपण्णत्ती के अनेक पद्यों में **संगाइणी, लोकविनिश्चय** तथा **लोकविभाग** नामक ग्रन्थों का उल्लेख पाया जाता है।[५७] **पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार** का कथन है कि यह **लोकविभाग** ग्रन्थ वही है, जिसकी रचना **आचार्य सर्वनन्दी** ने कांची के **राजा सिंहवर्मा** के राज्य में शकसंवत् ३८० (४५८ ई०) में की थी।[५८] इसके अतिरिक्त तिलोयपण्णत्ती में भगवान् महावीर के निर्वाण से लेकर १००० वर्ष (४७३ ई०)[५९] तक की अवधि में हुए राजाओं के काल का निर्देश किया गया है। इन दो तथ्यों के आधार पर मुख्तार जी ने यतिवृषभ का स्थितिकाल पाँचवीं शताब्दी ई० माना है।[६०] **पं० नाथूराम जी प्रेमी** एवं **डॉ० ए० एन० उपाध्ये** का भी यही मत है। किन्तु **पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य** ने तिलोयपण्णत्ती के कुछ गद्यांशों को धवलाटीका से गृहीत मानकर तथा अन्य कतिपय कारणों से वर्तमान **तिलोयपण्णत्ती** को नौवीं शताब्दी ई० में वीरसेन स्वामी के शिष्य **जिनसेन** द्वारा रचित बतलाया है।[६१]

माननीय पं० फूलचन्द्र जी के मत का निरसन पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने **पुरातन-जैनवाक्य-सूची** की प्रस्तावना में विस्तार से किया है। उन्होंने सोदाहरण सिद्ध किया है कि तिलोयपण्णत्ती और धवलाटीका में जो गद्यांश एक जैसे हैं, उनमें से कुछ तिलोयपण्णत्ती से धवला में ग्रहण किये गये हैं और कुछ धवला से तिलोयपण्णत्ती में आठवीं शताब्दी ई० के बाद प्रक्षिप्त हुए हैं। तिलोयपण्णत्ती का शेषभाग मौलिक है। मुख्तार जी लिखते हैं कि "कुछ प्रक्षिप्त अंशों के कारण किसी ग्रन्थ को दूसरा ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता।"[६२] तथा तिलोयपण्णत्ती के ईसा की पाँचवी शताब्दी में रचित होने की मुख्तार जी आदि विद्वानों की मान्यता का निरसन युक्ति-प्रमाण-पूर्वक ज्योतिषाचार्य **डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री** ने किया है। उनका हेतुवाद नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है। वे लिखते हैं-

"आचार्य वीरसेन के उल्लेखानुसार चूर्णिसूत्रकार का मत **कसायपाहुड** और **षट्खण्डागम** के मत के समान ही प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण है।[६३] वि० की ग्यारहवीं

---

५७. तिलोयपण्णत्ती / महाधिकार ४ / गा.२४७४ तथा महाधिकार ९ / गा.१०।

५८. पुरातन-जैनवाक्य-सूची / प्रस्तावना / पृ.३१।

५९. तिलोयपण्णत्ती / महाधिकार ४ / गा.१५१५-१५२७।

६०. पुरातन-जैनवाक्य-सूची / प्रस्तावना / पृ.३३-३४।

६१. जैनसिद्धांतभास्कर / भाग ११/ किरण १ / जून १९४४।

६२. पुरातन-जैनवाक्य-सूची / प्रस्तावना / पृ. ५४-५७।

६३. पं० जुगलकिशोर मुख्तार ने भी लिखा है कि "वीरसेन ने यतिवृषभ को एक बहुत प्रामाणिक आचार्य के रूप में उल्लिखित किया है और एक प्रसंग पर रागद्वेषमोह के अभाव को उनकी वचन-प्रमाणता में कारण बतलाया है—**कुदो णव्वदे? एदम्हादो चेव जइवसहाइरियमुहकमल-**

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

शताब्दी में आचार्य **नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती** ने 'लब्धिसार' नामक ग्रन्थ में पहले यतिवृषभ के मत का निर्देश किया है, तदनन्तर **भूतबलि** के मत का। इससे स्पष्ट है कि यतिवृषभ के चूर्णिसूत्र मूलग्रन्थों के समान ही महत्त्वपूर्ण और उपयोगी थे। --- चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ के व्यक्तित्व में निम्नलिखित विशेषताएँ उपलब्ध हैं—

१. यतिवृषभ आठवें कर्मप्रवाद के ज्ञाता थे।

२. नन्दिसूत्र के प्रमाण से ये कर्मप्रकृति के भी ज्ञाता सिद्ध होते हैं।

३. आर्यमंक्षु और नागहस्ती का शिष्यत्व इन्होंने स्वीकार किया था।

४. आत्मसाधक होने के साथ ये श्रुताराधक हैं।

५. धवला और जयधवला में भूतबलि और यतिवृषभ के मतभेद परिलक्षित होते हैं।

६. व्यक्तित्व की महनीयता की दृष्टि से यतिवृषभ भूतबलि के समकक्ष हैं। इनके मतों की मान्यता सार्वजनीन है।

७. चूर्णिसूत्रों में यतिवृषभ ने सूत्रशैली को प्रतिबिम्बित किया है।

८. परम्परा से प्रचलित ज्ञान को आत्मसात् कर चूर्णिसूत्रों की रचना की गई है।

९. यतिवृषभ आगमवेत्ता तो थे ही, पर उन्होंने सभी परम्पराओं में प्रचलित उपदेश-शैली का परिज्ञान प्राप्त किया और अपनी सूक्ष्म प्रतिभा का चूर्णिसूत्रों में उपयोग किया।'' (ती.म.आ.प. / खं.२ / पृ.८२)।

इन शब्दों में यतिवृषभ के व्यक्तित्व की महिमा प्रकट करने के बाद डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं—

''चूर्णिसूत्रकार आचार्य यतिवृषभ के समय के सम्बन्ध में विचार करने से ज्ञात होता है कि ये षट्खण्डागमकार भूतबलि के समकालीन अथवा उनके कुछ ही उत्तरवर्ती हैं। कुन्दकुन्द तो इनसे अवश्य प्राचीन हैं।'' (ती.म.आ.प. / खं.२ / पृ.८२)।

यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ती में **लोकविभाग**, **संगाइणी** और **लोकविनिश्चय** ग्रन्थों का उल्लेख किया है। (देखिये, पा.टि.५७)। वर्तमान में सर्वनन्दी द्वारा शक सं० ३८०

विणिग्गय-चुण्णिसुत्तादो। चुण्णिसुत्तमण्हा किं ण होदि? ण, रागदोसमोहा-भावेण पमाणत्तमुवगय-जइवसह-वयणस्स असच्चत्तविरोहादो'' जयधवला / प्र.पृ.४६। (पुरातन-जैनवाक्य-सूची / प्रस्तावना / पृ०३१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

(४५८ ई०) में रचित **लोकविभाग** नामक ग्रन्थ उपलब्ध है। पं० जुगलकिशोर मुख्तार आदि विद्वानों का कथन है कि यतिवृषभ ने इसी का उल्लेख किया है। इस पर डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री कहते हैं—''यतिवृषभ के समक्ष यही 'लोकविभाग' था, इसका कोई निश्चय नहीं। लोकानुयोग के ग्रन्थ प्राचीन हैं और संभवत: यतिवृषभ के समक्ष कोई प्राचीन **लोकविभाग** रहा होगा।'' (ती.म.आ.प./ खं.२/पृ.८३)। वे आगे लिखते हैं—''कुछ लोगों ने यह अनुमान किया है कि सर्वनन्दी के **लोकविभाग** का रचनाकाल विक्रम की पाँचवीं शताब्दी है। अत: यतिवृषभ का समय उसके बाद होना चाहिए। पर इस सम्बन्ध में हमारा विनम्र अभिमत यह है कि यतिवृषभ का समय इतनी दूर तक नहीं रखा जा सकता है।''(ती.म.आ.प./खं.२/पृ.८४)। इसकी पुष्टि में उन्होंने निम्नलिखित हेतु प्रस्तुत किये हैं—

''आचार्य यतिवृषभ ने अपने **तिलोयपण्णत्ती** ग्रन्थ में भगवान् महावीर के निर्वाण से लेकर १००० वर्ष तक होने वाले राजाओं के काल का उल्लेख किया है। अत: उसके बाद तो उनका होना संभव नहीं है। विशेषावश्यकभाष्यकार श्वेताम्बराचार्य श्री जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण ने अपने **विशेषावश्यकभाष्य** में चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ के आदेशकषाय-विषयक मत का उल्लेख किया है और विशेषावश्यकभाष्य की रचना शक संवत् ५३१ (वि० सं० ६६६) में होने का उल्लेख मिलता है। अत: यतिवृषभका समय वि० सं० ६६६ के पश्चात् नहीं हो सकता।

''आचार्य यतिवृषभ पूज्यपाद से पूर्ववर्त्ती हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने अपने सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में उनके एक मत विशेष का उल्लेख किया है-''**अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादशभागा न दत्ता:।**''[६४] अर्थात् जिन आचार्यों के मत से सासादनगुणस्थानवर्ती जीव एक इन्द्रिय जीवों में उत्पन्न नहीं होता है, उनके मत की अपेक्षा १२/१४ भाग स्पर्शनक्षेत्र नहीं कहा गया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि सासादन गुणस्थानवाला मरण कर नियम से देवों में उत्पन्न होता है। यह आचार्य यतिवृषभ का ही मत है। लब्धिसार-क्षपणासार के कर्त्ता आचार्य नेमिचन्द्र ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

जदि मरदि सासणो सो णिरय-तिरिक्खं णरं ण गच्छेदि।
णियमा देवं गच्छदि जइवसहमुणिंदवयणेण॥ ३४९॥

''अर्थात् आचार्य यतिवृषभ के वचनानुसार यदि सासादनगुणस्थानवर्ती जीव मरण करता है, तो नियम से देव होता है।

---

६४. सर्वार्थसिद्धि / भारतीय ज्ञानपीठ / १ / ८ / पा.टि. / पृ. ३७ तथा सर्वार्थसिद्धि / भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्परिषद् / सन् १९९५ / १ / ८ / पृ.२२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

शताब्दी में आचार्य **नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती** ने 'लब्धिसार' नामक ग्रन्थ में पहले यतिवृषभ के मत का निर्देश किया है, तदनन्तर **भूतबलि** के मत का। इससे स्पष्ट है कि यतिवृषभ के चूर्णिसूत्र मूलग्रन्थों के समान ही महत्त्वपूर्ण और उपयोगी थे। --- चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ के व्यक्तित्व में निम्नलिखित विशेषताएँ उपलब्ध हैं—

१. यतिवृषभ आठवें कर्मप्रवाद के ज्ञाता थे।

२. नन्दिसूत्र के प्रमाण से ये कर्मप्रकृति के भी ज्ञाता सिद्ध होते हैं।

३. आर्यमंक्षु और नागहस्ती का शिष्यत्व इन्होंने स्वीकार किया था।

४. आत्मसाधक होने के साथ ये श्रुताराधक हैं।

५. धवला और जयधवला में भूतबलि और यतिवृषभ के मतभेद परिलक्षित होते हैं।

६. व्यक्तित्व की महनीयता की दृष्टि से यतिवृषभ भूतबलि के समकक्ष हैं। इनके मतों की मान्यता सार्वजनीन है।

७. चूर्णिसूत्रों में यतिवृषभ ने सूत्रशैली को प्रतिबिम्बित किया है।

८. परम्परा से प्रचलित ज्ञान को आत्मसात् कर चूर्णिसूत्रों की रचना की गई है।

९. यतिवृषभ आगमवेत्ता तो थे ही, पर उन्होंने सभी परम्पराओं में प्रचलित उपदेश-शैली का परिज्ञान प्राप्त किया और अपनी सूक्ष्म प्रतिभा का चूर्णिसूत्रों में उपयोग किया।'' (ती.म.आ.प./खं.२/पृ.८२)।

इन शब्दों में यतिवृषभ के व्यक्तित्व की महिमा प्रकट करने के बाद डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं—

''चूर्णिसूत्रकार आचार्य यतिवृषभ के समय के सम्बन्ध में विचार करने से ज्ञात होता है कि ये षट्खण्डागमकार भूतबलि के समकालीन अथवा उनके कुछ ही उत्तरवर्ती हैं। कुन्दकुन्द तो इनसे अवश्य प्राचीन हैं।'' (ती.म.आ.प./खं.२/पृ.८२)।

यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ती में **लोकविभाग**, **संगाइणी** और **लोकविनिश्चय** ग्रन्थों का उल्लेख किया है। (देखिये, पा.टि.५७)। वर्तमान में सर्वनन्दी द्वारा शक सं० ३८०

विणिग्गय-चुण्णिसुत्तादो। चुण्णिसुत्तमण्हा किं ण होदि? ण, रागदोसमोहा-भावेण पमाणत्तमुवगय-जइवसह-वयणस्स असच्चत्तविरोहादो'' जयधवला/प्र.पृ.४६। (पुरातन-जैनवाक्य-सूची/प्रस्तावना/पृ०३१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

(४५८ ई०) में रचित **लोकविभाग** नामक ग्रन्थ उपलब्ध है। पं० जुगलकिशोर मुख्तार आदि विद्वानों का कथन है कि यतिवृषभ ने इसी का उल्लेख किया है। इस पर डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री कहते हैं—''यतिवृषभ के समक्ष यही 'लोकविभाग' था, इसका कोई निश्चय नहीं। लोकानुयोग के ग्रन्थ प्राचीन हैं और संभवतः यतिवृषभ के समक्ष कोई प्राचीन **लोकविभाग** रहा होगा।'' (ती.म.आ.प./खं.२/पृ.८३)। वे आगे लिखते हैं—''कुछ लोगों ने यह अनुमान किया है कि सर्वनन्दी के **लोकविभाग** का रचनाकाल विक्रम की पाँचवीं शताब्दी है। अतः यतिवृषभ का समय उसके बाद होना चाहिए। पर इस सम्बन्ध में हमारा विनम्र अभिमत यह है कि यतिवृषभ का समय इतनी दूर तक नहीं रखा जा सकता है।''(ती. म. आ. प./खं.२/पृ.८४)। इसकी पुष्टि में उन्होंने निम्नलिखित हेतु प्रस्तुत किये हैं—

''आचार्य यतिवृषभ ने अपने **तिलोयपण्णत्ती** ग्रन्थ में भगवान् महावीर के निर्वाण से लेकर १००० वर्ष तक होने वाले राजाओं के काल का उल्लेख किया है। अतः उसके बाद तो उनका होना संभव नहीं है। विशेषावश्यकभाष्यकार श्वेताम्बराचार्य श्री जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण ने अपने **विशेषावश्यकभाष्य** में चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ के आदेशकषाय-विषयक मत का उल्लेख किया है और विशेषावश्यकभाष्य की रचना शक संवत् ५३१ (वि० सं० ६६६) में होने का उल्लेख मिलता है। अतः यतिवृषभका समय वि० सं० ६६६ के पश्चात् नहीं हो सकता।

''आचार्य यतिवृषभ पूज्यपाद से पूर्ववर्त्ती हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने अपने सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में उनके एक मत विशेष का उल्लेख किया है-''**अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादशभागा न दत्ताः।**''[६४] अर्थात् जिन आचार्यों के मत से सासादनगुणस्थानवर्ती जीव एक इन्द्रिय जीवों में उत्पन्न नहीं होता है, उनके मत की अपेक्षा १२/१४ भाग स्पर्शनक्षेत्र नहीं कहा गया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि सासादन गुणस्थानवाला मरण कर नियम से देवों में उत्पन्न होता है। यह आचार्य यतिवृषभ का ही मत है। लब्धिसार-क्षपणासार के कर्त्ता आचार्य नेमिचन्द्र ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

जदि मरदि सासणो सो णिरय-तिरिक्खं णरं ण गच्छेदि।
णियमा देवं गच्छदि जइवसहमुणिंदवयणेण॥ ३४९॥

''अर्थात् आचार्य यतिवृषभ के वचनानुसार यदि सासादनगुणस्थानवर्ती जीव मरण करता है, तो नियम से देव होता है।

---

६४. सर्वार्थसिद्धि/भारतीय ज्ञानपीठ/१/८/पा.टि./पृ.३७ तथा सर्वार्थसिद्धि/भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत्परिषद् / सन् १९९५/१/८/पृ.२२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"आचार्य यतिवृषभ ने चूर्णिसूत्रों में अपने इस मत को निम्न प्रकार व्यक्त किया है—

"**आसाणं पुण गदो जदि मरदि, ण सक्को णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं वा गंतुं। णियमा देवगदिं गच्छदि।**" (कसायपाहुड/अधिकार१४/सूत्र ५४४)।

"इस उल्लेख से स्पष्ट है कि आचार्य यतिवृषभ पूज्यपाद के पूर्ववर्त्ती हैं और आचार्य पूज्यपाद के शिष्य वज्रनन्दि ने वि० सं० ५२६ में द्रविडसंघ की स्थापना की है। अत एव यतिवृषभ का समय वि० सं० ५२६ से पूर्व सुनिश्चित है।

"कितना पूर्व है, यह यहाँ विचारणीय है। गुणधर, आर्यमंक्षु और नागहस्ति के समय का निर्णय हो जाने पर यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि यतिवृषभ का समय आर्यमंक्षु और नागहस्ति से कुछ ही बाद है।

"आधुनिक विचारकों ने **तिलोयपण्णती** के कर्त्ता यतिवृषभ के समय पर पूर्णतया विचार किया है। पंडित नाथूराम प्रेमी और श्री जुगलकिशोर मुख्तार ने यतिवृषभ का समय लगभग पाँचवी शताब्दी माना है। डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने भी प्राय: इसी समय को स्वीकार किया है। पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री ने वर्तमान तिलोयपण्णत्ती के संस्करण का अध्ययन कर उसका रचनाकाल वि० की नवीं शताब्दी स्वीकार किया है। पर यथार्थत: यतिवृषभ का समय अन्त:साक्ष्य के आधार पर नागहस्ति के थोड़े अनन्तर सिद्ध होता है। यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ती के चतुर्थ अधिकार में बताया है कि भगवान् महावीर के निर्वाण होने के पश्चात् ३ वर्ष, आठ मास और एक पक्ष के व्यतीत होने पर पञ्चम काल नामक दुषम काल का प्रवेश होता है। इस काल में वीर नि० सं० ६८३ तक केवली, श्रुतकेवली और पूर्वधारियों की परम्परा चलती है। वीर-निर्वाण के ४६१ वर्ष पश्चात् शक राजा उत्पन्न होता है। शकों का राज्यकाल २४२ वर्ष बतलाया है।[६५] इसके पश्चात् यतिवृषभ ने गुप्तों के राज्यकाल का उल्लेख किया है। और इनका राज्यकाल २५५ वर्ष बतलाया है। इसमें ४२ वर्ष समय चतुर्मुख कल्की का भी है। इस प्रकरण के आगेवाली गाथाओं में आन्ध्र, गुप्त आदि नृपतियों के वंशों और राज्यवर्षों का निर्देश किया है। इस निर्देश पर से डा० ज्योतिप्रसाद जी ने निष्कर्ष निकालते हुए लिखा है—

"आचार्य यतिवृषभ ई० सन् ४७८, ४८३ या ई० सन् ५०० में वर्तमान रहते, जैसा कि अन्य विद्वानों ने माना है, तो वे गुप्तवंश की ई० सन् ४३१ में समाप्ति की चर्चा नहीं करते। उस समय (ई० सन् ४१४-४५५) कुमारगुप्त प्रथम का शासनकाल

---

६५. णिव्वाणगदे वीरे चउसदइगिसट्ठिवासविच्छेदे।
जादो य सगणरिंदो रज्जं वंसस्स दुसयबादाला॥ ४/१५१५/तिलोयपण्णत्ती॥

था, जिसका अनुसरण उसके वीर पुत्र स्कन्दगुप्त (ई० ४५५-४६७) ने किया। इतिहासानुसार यह राजवंश ५५० ई० सन् तक प्रतिष्ठित रहा है। तिलोयपण्णत्ती की गाथाओं द्वारा यह प्रकट होता है कि गुप्तवंश २०० या १७६ ई० सन् में प्रारम्भ हुआ। यह कथन भी भ्रान्तिमूलक प्रतीत होता है, क्योंकि इस का प्रारम्भ ई० सन् ३१९-३२० में हुआ था। इस प्रकार गुप्तवंश के लिए कुल समय २३१ वर्ष या २५५ वर्ष यथार्थ घटित होता है। शकों का राज्य निश्चय ही वीर नि० सं० ४६१ (ई० पू० ६६) में प्रारंभ हो गया था और यह ई० सन् १७६ तक वतर्मान रहा। ई० सन् ५वीं शती का लेखक अपने पूर्व के नाम या काल के विषय में भ्रान्ति कर सकता है, पर समसामयिक राजवंशों के काल में इस प्रकार की भ्रान्ति संभव नहीं है।''[६६]

''अत एव इतिहास के आलोक में यह निस्संकोच माना जा सकता है कि 'तिलोयपण्णत्ती' की ४/१४७४-१४९६ और ४/१४९९-१५०३ तथा उसके आगे की गाथाएँ किसी अन्य व्यक्ति द्वारा निबद्ध की गई हैं। निश्चय ही ये गाथाएँ ई० सन् ५०० के लगभग प्रक्षिप्त हैं।''

''तिलोयपण्णत्ती के प्रारम्भिक अंशरूप सैद्धान्तिक तथ्य मूलत: यतिवृषभ के हैं, जिनमें उन्होंने महावीर नि० सं० ६८३ या ७०३ (ई० सन् १५६-१७६) तक की सूचनाएँ दी हैं। तिलोयपण्णत्ती के अन्य अंशों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि यतिवृषभ द्वारा विरचित इस ग्रन्थ का प्रस्तुत संस्करण किसी अन्य आचार्य ने सम्पादित किया है। यही कारण है कि सम्पादनकर्त्ता से इतिहास-सम्बन्धी कुछ भ्रान्तियाँ हुई हैं। यतिवृषभ का समय शक सं० के निर्देश के आधार पर तिलोयपण्णत्ती के आलोक में भी ई० सन् १७६ के आसपास सिद्ध होता है।

''यतिवृषभ अपने युग के यशस्वी आगमज्ञाता विद्वान् थे। ई० सन् सातवीं शती के तथा उत्तरवर्ती लेखकों ने इनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इनके गुरुओं के नामों में आर्यमंक्षु और नागहस्ति की गणना है। ये दोनों आचार्य श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्पराओं द्वारा समान रूप से सम्मानित थे। आर्यमंक्षु का समय ई० सन् प्रथम शताब्दी और नागहस्ति का समय ई० सन् १००-१५० तक का माना गया है। यतिवृषभ नागहस्ति के अन्तेवासी बताये गये हैं। अत: यह संभव है कि चूणिसूत्रों की रचना के पश्चात् तिलोयपण्णत्ती की रचना इन्होंने की। मथुरा में संचालित सरस्वती-आन्दोलन का प्रभाव इन पर भी रहा हो और ये भी ई० सन् १५०-१८० तक सम्मिलित रहे हों, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। इन्होंने ग्रन्थरूप में सरस्वती का अवतरण कर परम्परा को जीवित रखा है।

---

६६. The Jaina Sources of the history of Ancient India, p. 140-141.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"तिलोयपण्णत्ती के वर्तमान संस्करणों में भी कुछ ऐसी गाथाएँ समाविष्ट हैं, जो आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में पाई जाती हैं। इस समता से भी उनका समय कुन्दकुन्द के पश्चात् आता है।

"विचारणीय प्रश्न यह है कि यतिवृषभ के पूर्व यदि **महाकर्मप्रकृतिप्राभृत** का ज्ञान समाप्त हो गया होता, तो यतिवृषभ को कर्मप्रकृति का ज्ञान किससे प्राप्त होता? अतः यतिवृषभ का स्थिति काल ऐसा होना चाहिए, जिसमें **कर्मप्रकृतिप्राभृत** का ज्ञान अवशिष्ट रहा हो। दूसरी बात यह है कि **षट्खण्डागम** और **कषायप्राभृत** में अनेक तथ्यों में मतभेद है और इस मतभेद को **तन्त्रान्तर** कहा है। धवला और जयधवला में भूतबलि और यतिवृषभ के मतभेद की चर्चा आई है। इससे भी यतिवृषभ को भूतबलि से बहुत अर्वाचीन नहीं माना जा सकता है।" (ती.म.आ.प. / खं.२ / पृ. ८४-८७)।

इस प्रकार आचार्य यतिवृषभ का समय ईसा की द्वितीय शताब्दी का उत्तरार्ध निश्चित होता है।

५.२. तिलोयपण्णत्ती में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण

तिलोयपण्णत्ती में नौ महाधिकार हैं, जिनमें अन्तिम महाधिकार का नाम **सिद्धलोयपण्णत्ती** (सिद्धलोकप्रज्ञप्ति) है। इसके भीतर पाँच अन्तराधिकार रखे गये हैं—१. सिद्धों की निवासभूमि, २. संख्या, ३. अवगाहना, ४. सौख्य और ५. सिद्धत्व-हेतु-भाव।[६७] आचार्य यतिवृषभ ने सिद्धत्व के हेतुभूत भावों का वर्णन करने के लिए प्रस्तावना के रूप में निम्नलिखित गाथा स्वयं रची है—

जह चिरसंचिदमिंधणमणलो पवणाहदो लहुं दहइ।
तह कम्मिंधणमहियं खणेण झाणाणलो दहइ॥ ९/२२॥ ति.प.।

अनुवाद—"जैसे चिरसञ्चित ईंधन को पवन से आहत अग्नि शीघ्र जला देती है, वैसे ही ध्यानरूपी अग्नि कर्मरूपी प्रचुर ईंधन को क्षणभर में भस्म कर देती है।"

इसके पश्चात् तिलोयपण्णत्तिकार ने कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की उन विभिन्न गाथाओं को लाकर रख दिया है, जिनमें स्वभाव-स्थिति, शुद्धात्मध्यान, शुद्धोपयोग, स्वात्मानुचरण आदि नामों से जानी जाने वाली मोक्ष की हेतुभूत शुभाशुभभाव-निवृत्ति एवं उस अवस्था

---

६७. उम्मग्ग-संठियाणं भव्वाणं मोक्खमग्गदेसयरं।
पणमिय संतिजिणेसं वोच्छामो सिद्धलोयपण्णत्ती॥ ९/१॥
सिद्धाण णिवासखिदी संखा ओगाहणाणि सोक्खाइं।
सिद्धत्तहेदुभावो सिद्धजगे पंच अहियारा॥ ९/२॥ तिलोयपण्णत्ती।

में किये जाने वाले स्वात्मचिन्तन के प्रकार का वर्णन है। उन गाथाओं के पूर्वार्ध या उत्तरार्ध अथवा किसी पाद को बदलकर ग्रन्थकार ने कुछ नयी गाथाएँ भी रची हैं। इस तरह 'सिद्धलोयपण्णत्ती' नामक महाधिकार के 'सिद्धत्वहेतुभाव' नामक अन्तराधिकार की रचना प्रायः कुन्दकुन्द की गाथाओं से की गई हैं। वे गाथाएँ इस प्रकार हैं—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे **सो अप्पाणं हवदि झादा**॥ २/९९॥ प्र.सा.।

अनुवाद—"न मैं पर का हूँ, न पर मेरे हैं, मैं तो एकमात्र ज्ञान हूँ, ऐसा जो ध्यान में चिन्तन करता है, वह आत्मा का ध्याता होता है।"

जो खविदमोहकलुसो विसयविरत्तो मणो णिरुंभित्ता।
समवट्ठिदो सहावे **सो अप्पाणं हवदि झादा** ॥ २/१०४॥ प्र.सा.।

अनुवाद—"जो मोहमल का विनाश कर, विषयों से विरक्त हो और मन को रोककर स्वभाव में स्थित होता है, वह आत्मा का ध्याता होता है।"

प्रवचनसार की इन गाथाओं में '**सो अप्पाणं हवदि झादा**' इस वाक्य की पुनरावृत्ति से सिद्ध है कि ये गाथाएँ आत्मध्याता के स्वरूप-निरूपक प्रकरण से सम्बद्ध हैं। प्रवचनसार के द्वितीय अधिकार में क्रमांक ९९ से लेकर १०४ तक छह गाथाओं में आत्मध्याता के स्वरूप का निरूपण किया गया है। उनमें '**णाहं होमि परेसिं**' इस गाथा (९९) से निरूपण शुरू होता है और '**जो खविदमोहकलुसो**' इस गाथा (१०४) पर समाप्त होता है। प्रवचनसार के आत्मध्याता-प्रकरण से सम्बद्ध होने के कारण निश्चित होता है कि ये दोनों गाथाएँ मूलतः प्रवचनसार की हैं। तिलोयपण्णत्तिकार ने '**णाहं होमि परेसिं**' इस गाथा को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है और इसके बाद की दो गाथाएँ छोड़कर '**जो एवं जाणित्ता**' (प्र.सा. २/१०२) इत्यादि गाथा को उसके उत्तरार्ध में परिवर्तन कर साथ में रख दिया है। इस तरह ये दोनों गाथाएँ संक्षेप में सिद्धत्व के हेतुभूत भाव की प्रतिपादक बन गयी हैं। प्रवचनसार की '**जो एवं जाणित्ता**' गाथा इस प्रकार है—

जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पगं विसुद्धप्पा।
सागारोऽणागारो खवेदि सो मोहदुग्गंठिं॥ २/१०२॥ प्र.सा.।

अनुवाद—"जो श्रावक और श्रमण निजात्मा को (एक उपयोगलक्षण आत्मा ही ध्रुव है) ऐसा जानकर परमात्मा का ध्यान करता है, वह विशुद्ध होता हुआ मोहग्रन्थि (मिथ्यात्व) का विनाश करता है।"

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्रवचनसार में यह गाथा '**णाहं होमि परेसिं**' गाथा से दो गाथाओं के बाद निबद्ध है, किन्तु तिलोयपण्णत्तिकार ने उपर्युक्त प्रयोजन से इसे ठीक उसके बाद उत्तरार्ध-परिवर्तन के साथ इस प्रकार रख दिया है—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाणं हवदि झादो॥ ९/३६॥ति.प.।
जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पयं विसुद्धप्पा।
अणुवममपारमदिसयसोक्खं पावेदि सो जीओ॥ ९/३७॥ति.प.।

इसके अतिरिक्त '**णाहं होमि परेसिं**' गाथा के **सो अप्पाणं हवदि झादा** इस अन्तिम चरण के स्थान में **सो मुच्चइ अट्ठकम्मेहिं** (वह आठ कर्मों से मुक्त हो जाता है) वाक्य रखकर भी सिद्धत्वहेतुभाव को व्यक्त करनेवाली एक नयी गाथा रच दी है। देखिए—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे **सो मुच्चई अट्ठकम्मेहिं**॥ ९/३०॥ ति.प.।

प्रवचनसार में लगभग ऐसी ही एक गाथा और है—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि।
इदि णिच्छिदो जिदिंदो जादो जधजादरूवधरो॥ ३/४॥ प्र.सा.।

अनुवाद—"न मैं पर का हूँ, न पर मेरे हैं, न इस लोक में मेरा कुछ है, ऐसा निश्चित कर जितेन्द्रिय आत्मा यथाजातरूपधर (नग्न) हो जाता है।"

इस गाथा के उत्तरार्ध को पूर्णतः परिवर्तित कर इसे भी सिद्धत्वहेतुभाव का प्ररूपक बनाकर तिलोयपण्णत्ती में रख दिया गया है। यथा—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि।
एवं खलु जो भावइ सो पावइ सव्वकल्लाणं ॥ ९/३८॥ ति.प.।

अनुवाद—"न मैं पर का हूँ, न पर मेरे हैं, न इस लोक में मेरा कुछ है," ऐसा जो भाता (चिन्तन करता) है, वह सर्वकल्याण को पा लेता है।"

इस प्रकार प्रवचनसार की इन गाथाओं में यतिवृषभाचार्य ने स्वाभीष्ट विभिन्न शब्दों का प्रयोग कर उनमें वर्णित स्वपरभेद-विज्ञान एवं आत्मध्यान की विभिन्न प्रकार से मोक्षहेतुता प्रकट की है। परद्रव्यों से स्वात्मा की भिन्नता का दर्शन और चिन्तन ही वह आत्मध्यान है, जिससे कर्मों का क्षय होता है। इस आत्मध्यान का प्ररूपण आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने **प्रवचनसार** में बड़े प्रभावक शब्दों में किया है। यतिवृषभाचार्य

को वह बहुत भाया। उसके प्ररूपण के लिए इनसे अच्छे शब्दों का प्रयोग और नहीं हो सकता था, इसलिए उन्होंने आत्मध्यान के प्ररूपणार्थ कुन्दकुन्द की गाथाएँ ज्यों की त्यों अपना लीं और कहीं-कहीं उपयुक्त स्थान में उपर्युक्त शब्दों का प्रतिस्थापन कर उन्हें अपने अभीष्ट विषय का प्रतिपादक बना लिया।

प्राचीनकाल में यह साहित्यिक चोरी नहीं कहलाती थी। अस्तेय-महाव्रतधारी मुनियों को न ख्यातिलाभ की चाह थी, न अर्थलाभ की। उन्हें केवल प्रभावक शब्दों में जिनोपदेश के प्रतिपादन की चाह थी। इसलिए अपने अभीष्ट जिनोपदेश के प्रतिपादनार्थ जहाँ उन्हें पूर्वरचित सुन्दर गाथाएँ उपलब्ध हो जाती थीं, वहाँ से उन्हें निःसंकोच ग्रहण कर लेते थे, इससे उनकी पुनरावृत्ति का निरर्थक परिश्रम और समय का अपव्यय बच जाता था।

इसी प्रकार प्रवचनसार की '**जो खविदमोहकलुसो**' इत्यादि गाथा के अन्तिम चरण **सो अप्पाणं हवदि झादा** के स्थान में भी एक बार **सो पावइ णिव्वुदिं सोक्खं** (वह मोक्षसुख प्राप्त करता है) तथा दूसरी बार **सो मुच्चइ कम्मणिगलेहिं** (वह कर्मबन्धनों से छूट जाता है) वाक्य रखकर उसे मोक्षप्राप्ति के हेतुभूत भाव का प्ररूपक बना दिया है। यथा—

जो खविदमोहकलुसो विसयविरत्तो मणो णिरुंभित्ता।
समवट्ठिदो सहावे **सो पावइ णिव्वुदिं सोक्खं**॥ ९/२३॥ ति.प.।

जो खविदमोहकम्मो विसयविरत्तो मणो णिरुंभित्ता।
समवट्ठिदो सहावे **सो मुच्चइ कम्मणिगलेहिं**॥ ९/४८॥ ति.प.।

प्रवचनसार के द्वितीय अधिकार की निम्नलिखित ६८ वीं गाथा में देहादि परद्रव्य के साथ आत्मा के सभी प्रकार के सम्बन्धों का निषेध किया गया है—

णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण ण कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं॥ २/६८॥ प्र.सा.।

अनुवाद—"न मैं देह हूँ, न मन, न वाणी, न उनका कारण (पुद्गलरूप उपादान), न कर्त्ता (निमित्त), न कारयिता और न उनके करनेवाले पुद्गलों का अनुमोदक।"

उक्त अधिकार की क्र. ६९ से लेकर ७९ तक की ११ गाथाओं में विभिन्न युक्तियों से जीव और पुद्गल की भिन्नता का उपपादन कर '**अरसमरूवमगंधं**' इस ८०वीं गाथा में जीव के शुद्ध (पौद्गलिक धर्मों से रहित) स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकरण-सम्बद्धता से सिद्ध है कि '**णाहं देहो ण मणो**' गाथा मूलतः प्रवचनसार की है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इसके अतिरिक्त कुन्दकुन्दकृत नियमसार में भी इसी प्रकार की अनेक गाथाएँ हैं। जैसे—

णाहं बालो बुड्ढो ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण हि कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं॥ ७९॥

णाहं रागो दोसो ण चेव मोहो ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण हि कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं॥ ८०॥

७७, ७८ और ८१ क्रमांकवाली गाथाएँ भी बिलकुल ऐसी ही हैं। इस रचनाशैली के साम्य से इस बात में कोई सन्देह नहीं रहता कि प्रवचनसार की उपर्युक्त गाथा कुन्दकुन्दकृत ही है।

यतः जीव और देहादि की भिन्नता का ज्ञान कर पुद्गलादिपरधर्मरहित निज शुद्धात्मा का ध्यान करने से कर्मक्षय होता है और जीव तथा पौद्गलिक देहादि की भिन्नता का प्रतिपादन **'णाहं देहो ण मणो'** इत्यादि गाथा के पूर्वार्ध से भी संक्षेप में हो जाता है, अतः तिलोयपण्णत्तिकार ने गाथा के पूर्वार्ध के साथ अपने अभिप्राय का प्रतिपादक उत्तरार्ध जोड़कर गाथा को संक्षेप में सिद्धत्व के कारणभूत भाव का प्ररूपक बना दिया है। यथा—

णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं।
एवं खलु जो भाओ सो पावइ सासयं ठाणं॥ ९/३२॥ ति.प.।

अनुवाद—"न मैं देह हूँ, न मन हूँ, न वाणी हूँ और न उनका कारण ही हूँ, ऐसा जो भाता है (चिन्तन करता है), वह शाश्वत स्थान (मोक्ष) पाता है।"

निम्नलिखित गाथाएँ कुन्दकुन्दरचित समयसार के जीवाधिकार की हैं, जिसमें समस्त परद्रव्यों और परभावों से जीव की भिन्नता दर्शाते हुए उसके एकत्व का प्रतिपादन किया गया है—

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव **अहमिक्को।**
तं मोहणिम्ममत्तं **समयस्स वियाणया विंति॥** ३६॥ स.सा.।

अनुवाद—"जो यह जानता है कि मोह से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं तो एक मात्र उपयोग ही हूँ, उसे शुद्धात्मस्वरूप के ज्ञायक पुरुष मोह से ममत्वरहित मानते हैं।"

णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव **अहमिक्को।**
तं धम्मणिम्ममत्तं **समयस्स वियाणया विंति॥** ३७॥ स.सा.।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"जो यह जानता है कि धर्म (अधर्म, आकाश) आदि द्रव्यों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं तो एक मात्र उपयोग ही हूँ, उसे शुद्धात्मस्वरूप के ज्ञाता धर्मादि द्रव्यों से ममत्वरहित मानते हैं।"

इन गाथाओं के प्रतिपाद्य विषय एवं पूर्वापर गाथाओं के साथ प्रकरणगत सम्बन्ध से सिद्ध है कि ये मूलतः समयसार के जीवाधिकारगत जीवाजीवभिन्नत्व या जीवैकत्वप्रतिपादक प्रकरण की गाथाएँ हैं। इनका रचनासाम्य और अर्थसाम्य सिद्ध करता है कि ये एक ही रचनाकार की लेखनी से प्रसूत हुई हैं। इन गाथाओं का शाब्दिक साम्य एक-दूसरे के साथ तो है ही, इसके अतिरिक्त समयसार की निम्नलिखित गाथाओं से भी है। यथा—

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणइ आदं।
तं जिदमोहं सा **परमट्ठवियाणया विंति**॥ ३२॥ स.सा.।

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइयो सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमित्तं पि॥ ३८॥ स.सा.।

अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।
तम्हि ठिओ तच्चित्तो सव्वे एए खयं णेमि॥ ७३॥ स.सा.।

---------- जाणगभावो दु **अहमिक्को**॥ १९८॥ स.सा.।

---------- जाणगभावो हु **अहमिक्को**॥ १९९॥ स.सा.।

समयसार की उपर्युक्त ३६ वीं एवं ३७ वीं गाथाओं में **अहमिक्को** शब्द का प्रयोग हुआ है, वैसा ही समयसार की इन ३२, ३८, ७३, १९८ एवं १९९ क्रमांक की गाथाओं में भी हुआ है। इसी प्रकार ३६ वीं एवं ३७ वीं गाथाओं में **समयस्स वियाणया विंति** वाक्य प्रयुक्त हुआ है, वैसा ही समयसार की ऊपर उद्धृत ३२ वीं गाथा में तत्सदृश **परमट्ठवियाणया विंति** वाक्य प्रयुक्त हुआ है। समयसार की अन्य गाथाओं से यह शाब्दिक एकरूपता भी, जो रचनाशैलीगत एकरूपता है, सिद्ध करती है कि '**णत्थि मम को वि मोहो**' गाथा मूलतः समयसार की है। इसके पूर्वार्ध को भी आचार्य यतिवृषभ ने **तिलोयपण्णत्ती** में यथावत् ग्रहण किया है। उदाहरण नीचे द्रष्टव्य है—

णत्थि मम कोइ मोहो बुज्झो उवजोगमेवमहमेगो।
इह भावणाहि जुत्तो खवे दुट्ठट्ठ कम्माणि॥ ९/२९॥

उपर्युक्त '**अहमिक्को खलु सुद्धो**' इत्यादि ३८ वीं गाथा भी समयसार के जीवाधिकारगत **प्रतिबुद्ध-प्रकरण** से सम्बद्ध है और **अहमिक्को** शब्द के प्रयोग से

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उसकी ऊपर निर्दिष्ट समयसार की गाथाओं के साथ रचनाशैली-गत एकरूपता भी है, अतः वह भी समयसार की मौलिक गाथा है। उसे भी **तिलोयपण्णत्ती** में प्रायः यथावत् आत्मसात् किया गया है। यथा—

अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणप्पगो सदारूवी।
ण वि अत्थि मज्झि किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि॥ ९/२८॥

अधोलिखित गाथा **समयसार** के जीवाधिकार में आये अप्रतिबुद्ध-प्रकरण से सम्बद्ध है, जो १९वीं गाथा (कम्मे णोकम्मम्हि) से लेकर २६वीं गाथा (जदि जीवो ण सरीरं) तक चलता है—

कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव॥ १९॥

अनुवाद—"जब तक कर्म और नोकर्म में 'मैं कर्म और नोकर्म हूँ तथा ये कर्म और नोकर्म मेरे हैं' ऐसी बुद्धि होती है, तब तक आत्मा अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) रहता है।"

समयसार की इस अप्रतिबुद्धलक्षण-प्रतिपादक गाथा को, उसके अन्तिम पाद में नवीन वाक्य रखकर **तिलोयपण्णत्तिकार** ने मोक्षविरोधिभाव-प्रतिपादक गाथा का रूप दे दिया है और अपने ग्रन्थ के सिद्धत्वहेतुभाव-प्रकरण में प्रतिष्ठित कर लिया है। यथा—

कम्मे णोकम्मम्मि य अहमिदि अहयं च कम्म-णोकम्मं।
जायदि सा खलु बुद्धी **सो हिंडइ गरुव-संसारं**॥ ९/४७॥

अनुवाद—"कर्म और नोकर्म में 'मैं कर्म और नोकर्म हूँ तथा कर्म और नोकर्म मेरे हैं' यह जो बुद्धि होती है, उससे जीव गहन संसार में भ्रमण करता है।"

समयसार के तात्पर्यवृत्तिगत पाठ में '**जो सुयणाणं सव्वं**' इस १०वीं गाथा के अनन्तर निम्नलिखित दो गाथाएँ दी गयी हैं—

णाणम्हि भावणा खलु कादव्वा दंसणे चरित्ते य।
ते पुण तिण्णिवि आदा तम्हा कुण भावणं आदे॥ ११॥

जो आदभावणमिणं णिच्चुवजुत्तो मुणी समाचरदि।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण॥ १२॥

अनुवाद—"सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में भावना करनी चाहिए और क्योंकि वे तीनों आत्मा ही हैं, अतः आत्मा में भावना करो।"(११)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"जो मुनि इस आत्मभावना का नित्य उद्यत होकर आचरण करता है, वह थोड़े ही समय में समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।"(१२)।

इनमें से दूसरी गाथा **तिलोयपण्णत्ती** में '**गयसित्थमूस**' आदि गाथा के बाद जोड़ दी गयी। यथा—

गयसित्थ-मूस-गब्भायारो रयणत्तयादिगुणजुत्तो।
णिय-आदा झायव्वो खयरहिदो जीवघणदेसो॥ ९ / ४५॥

जो आदभावणमिणं णिच्चुवजुत्तो मुणी समाचरदि।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावइ अचिरेण कालेण॥ ९ / ४६॥

अनुवाद—"मोम से रहित मूसक के भीतरी आकार के समान, रत्नत्रयादि गुणों से युक्त, अविनश्वर, अखण्डप्रदेशी आत्मा का ध्यान करो।"(९/४५)।

"जो मुनि इस आत्मभावना का नित्य उद्यत होकर आचरण करता है, वह थोड़े ही समय में समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।"(९ / ४६)।

यहाँ हम देखते हैं कि समयसार की ऊपर उद्धृत '**णाणम्हि भावणा**' इत्यादि गाथा में ही '**भावणा**', '**भावणं आदे**' (**आदभावणं**) शब्दों का प्रयोग हुआ है, तिलोय-पण्णत्ती की '**गयसित्थमूस**' आदि गाथा में नहीं। इसलिए '**जो आदभावणमिणं**' यह दूसरी गाथा शब्दसाम्य-प्रमाण से समयसार की '**णाणम्हि भावणा**' आदि गाथा के ही साथ स्वभावतः सम्बद्ध सिद्ध होती है। '**गयसित्थमूस**' आदि गाथा में '**भावणा**' '**भावणं आदे**' आदि शब्द न होने से, उसके बाद रखी गयी '**जो आदभावणमिणं**' गाथा पूर्वगाथा से स्वभावतः सम्बद्ध सिद्ध नहीं होती। इससे स्पष्ट है कि यह गाथा समयसार की ही है, इसे आचार्य यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ती में आत्मसात् कर लिया है।

इसी प्रकार **प्रवचनसार** के द्वितीय अधिकार में निम्नलिखित तीन गाथाएँ क्रमशः कही गयी हैं—

देहा वा दविणा वा सुहदुक्खा वाध सत्तुमित्तजणा।
जीवस्स ण संति धुवा धुवोवओगप्पगो अप्पा॥ २/१०१॥

जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पगं विसुद्धप्पा।
सागारोऽणागारो खवेदि सो मोहदुग्गंठिं॥ २/१०२॥

जो णिहदमोहगंठी रागपदोसे खवीय सामण्णे।
होज्जं समसुहदुक्खो सो सोक्खं अक्खयं लहदि॥ २/१०३॥

अनुवाद—"शरीर, धनधान्य, सुखदुःख और शत्रुमित्र जीव के साथ सदा नहीं रहते, केवल उपयोगलक्षण आत्मा सदा रहता है।"(२/१०१)।

"ऐसा जानकर जो परमात्मा का ध्यान करता है, वह साकार हो या अनाकार, विशुद्ध होता हुआ मोहनीय कर्म की अशुभ ग्रन्थि को नष्ट कर देता है।"(२/१०२)।

"जो पुरुष मोहग्रन्थि को नष्ट कर श्रमणावस्था में रागद्वेष का विनाश करता हुआ सुखदुःख में समभाव धारण करता है, उसे अक्षयसुख की प्राप्ति होती है।"(२/१०३)।

ये तीनों गाथाएँ अर्थ की दृष्टि से परस्पर सम्बद्ध हैं। दूसरी गाथा के '**जो एवं जाणित्ता**' (जो ऐसा जानकर) ये शब्द पहली गाथा में कहे हुए अर्थ को संकेतित करते हैं और तीसरी गाथा के '**जो णिहदमोहगंठी**' (जो पुरुष मोहग्रंथी का विनाश करता है) शब्द दूसरी गाथा में कथित मोहदुर्ग्रन्थि का विनाश करनेवाले की ओर संकेत करते हैं। दोनों गाथाओं में प्रयुक्त '**मोहग्रन्थि**' शब्द से दोनों के अर्थगत अन्तः-सम्बन्ध की विशेषतया पुष्टि होती है। यह आधारभूत अन्तःसम्बन्ध सिद्ध करता है कि ये तीनों गाथाएँ प्रवचनसार की मौलिक गाथाएँ हैं। आचार्य यतिवृषभ ने इनमें से '**जो णिहदमोहगंठी**' इस तीसरी गाथा को **तिलोयपण्णत्ती** में सम्मिलित किया है। वह उसके नौवें महाधिकार की ५४वीं गाथा है।

समयसार और **प्रवचनसार** में नीचे लिखी गाथाएँ उपलब्ध होती हैं—

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दो पुण्णपावजोएसु।
दंसणणाणम्हि ठिदो इच्छाविरओ य अण्णम्हि॥ १८७॥ स.सा.।

जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा।
णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चेयेइ एयत्तं॥ १८८॥ स.सा.।

अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ।
लहइ अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं॥ १८९॥ स.सा.।

जो मोहरागदोसे णिहणदि उवलब्भ जोण्हमुवदेसं।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण॥ १/८८॥ प्र.सा.।

अनुवाद—"जो शुभ और अशुभ दोनों योगों से निवृत्त होकर आत्मा को आत्मा से ही रोककर, दर्शनज्ञान में स्थित होता है एवं अन्य पदार्थों की इच्छा से रहित होकर सर्व परिग्रह से मुक्त हो जाता है, पश्चात् आत्मा को आत्मा से ही ध्याता है तथा कर्म और नोकर्म से तनिक भी स्पृष्ट न होते हुए केवल चैतन्यभाव से ही एकत्व का अनुभव करता है, वह जीव आत्मा का ध्यान करते हुए दर्शनज्ञानमय हो जाता है, और शीघ्र ही कर्ममुक्त आत्मा को पा लेता है।" (स.सा./१८७-१८९)।

"जो जिनोपदेश पाकर मोहरागद्वेष का विनाश करता है, वह शीघ्र ही समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।" (प्र.सा./१/८८)।

समयसार की उक्त तीन गाथाएँ एक (मिश्र) वाक्यरूप हैं। तीनों गाथाओं के द्वारा ही एक कथन पूर्ण होता है। आदि की ढाई गाथाएँ उद्देश्यरूप हैं और अन्तिम आधी गाथा विधेयरूप। अन्तिम गाथा के उत्तरार्ध में कर्मविमुक्त आत्मा की प्राप्ति के कार्य का वर्णन है और आदि की ढाई गाथाओं में उसके कारणों का। इससे सिद्ध है कि दूसरी गाथा का '**जो सव्वसंगमुक्को**' इत्यादि पूर्वार्ध उक्त गाथासमूह का अविभाज्य अंग है, अतएव समयसार का मौलिक अंश है। इसी प्रकार प्रवचनसार की उपर्युक्त गाथा अपनी पूर्ववर्ती '**जिणसत्थादो अट्ठे**' (प्र.सा.१/८६) आदि गाथाओं के आधार पर अस्तित्व में आयी है, इसलिए वह भी प्रवचनसार की मौलिक गाथा है।

कुन्दकुन्द की इन गाथाओं में से दूसरी गाथा के पूर्वार्ध और अन्तिम गाथा के उत्तरार्ध को लेकर यतिवृषभ ने **तिलोयपण्णत्ती** की यह गाथा निर्मित की है—

जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावइ अचिरेण कालेण॥ ९/५१॥

प्रवचनसार के प्रथम अधिकार में आचार्य कुन्दकुन्द ६९वीं गाथा से लेकर ७६वीं गाथा तक आठ गाथाओं में पुण्यजन्य इन्द्रियसुख को भी दुःखरूप ही बतलाते हुए ७७ वीं गाथा में उपसंहार रूप में कहते हैं—

ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।
हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो॥ १/७७॥

अनुवाद—"जो ऐसा नहीं मानता कि पुण्य और पाप में भेद नहीं है, वह मोह से आच्छन्न हो घोर और अपार संसार में भ्रमण करता है।"

पुण्य की दुःखरूपता का प्रतिपादन करने के बाद उपसंहाररूप में इस गाथा का कथन स्वाभाविक होने से सिद्ध है कि यह प्रवचनसार की मौलिक गाथा है। यह गाथा तिलोयपण्णत्ती (९/५८) में भी ज्यों की त्यों मिलती है, किन्तु उसके पूर्व में पुण्य की दुःखरूपता का वैसा प्रतिपादन नहीं है, जैसा प्रवचनसार में है, जिससे सिद्ध है कि वह तिलोयपण्णत्ती की अपनी गाथा नहीं है। किन्तु वह उसके 'सिद्धत्व-हेतुभाव' अधिकार में संग्रह-योग्य थी, इसलिए आचार्य यतिवृषभ ने उसका उसमें संग्रह कर लिया है।

इस गाथा के पहले **तिलोयपण्णत्ती** में निम्नलिखित गाथा भी पायी जाती है—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।
संसारगमणहेदुं वि मोक्खहेदुं अयाणंता॥ ९/५७॥

यह समयसार के पुण्यपापाधिकार की १५४ वीं गाथा है और पुण्यपाप-प्रकरण से इसका अर्थगत तादात्म्य है। इसके अतिरिक्त इसके पूर्व निबद्ध तीन गाथाओं में तथा उत्तरवर्ती एक गाथा में **परमार्थ** (आत्मस्वरूप) में स्थित और अस्थित मुनि की परिणतियों का वर्णन किया गया है, जो **'परमट्ठो खलु समओ'** (स.सा.१५१), **'परमट्ठम्हि दु अठिदो'** (स.सा.१५२), **'परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं'** (स.सा.१५३) एवं **'परमट्ठमस्सिदाण दु'** (स.सा.१५६) इन उक्तियों से सूचित होता है। उपर्युक्त १५४ वीं गाथा में भी परमार्थबाह्य मुनियों की परिणति का वर्णन है। इस शब्दसाम्य और भाव-साम्य से भी उसका पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती गाथाओं से तादात्म्य है। इससे सिद्ध है कि वह मूलतः समयसार की ही गाथा है। तिलोयपण्णत्ती में न तो पुण्यपाप का कोई प्रकरण है, न ही परमार्थस्थित और परमार्थबाह्य मुनियों की परिणति की प्रतिपादक अन्य गाथाएँ हैं, यहाँ तक कि **परमार्थ** के अर्थ की व्याख्या भी किसी पूर्व गाथा में नहीं की गई, जैसी समयसार की **'परमट्ठो खलु समओ'** (१५१) इत्यादि गाथा में की गई है। वस्तुतः शुद्धात्मस्वभाव के अर्थ में **परमार्थ** शब्द का प्रयोग कुन्दकुन्द की देन है। यह इस बात के निर्णय के लिए पर्याप्त सबूत है कि उपर्युक्त गाथा का मूल तिलोयपण्णत्ती में नहीं है, अपितु उसके 'सिद्धत्व-हेतुभाव' अधिकार में रखे जाने योग्य होने से उसे समयसार से ले लिया गया है।

प्रवचनसार की निम्नलिखित गाथाओं में से भी प्रथम और अन्तिम को छोड़कर शेष सभी ज्यों की त्यों उसी क्रम से तिलोयपण्णत्ती में मिलती हैं—

१. **परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयं त्ति पण्णत्तं।**
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेदव्वो॥ प्र. सा. १/८।

२. **जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।**
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो॥
प्र. सा.१/९, ति.प. ९/६०।

३. **धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोगजुदो।**
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं॥
प्र. सा. १/११, ति.प.९/६१।

४. **असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।**
दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिंधुदो भमदि अच्चंतं॥
प्र. सा. १/१२, ति.प.९/६२।

५. **अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं।**
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं॥
प्र.सा. १/१३, ति.प.९/६३।

६. **सुविदिदपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।**
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगो त्ति॥ प्र.सा. १/१४।

यहाँ '**परिणमदि जेण**' इस प्रथम गाथा में कहा गया है कि "आत्मा जिस समय जिस भाव में परिणत होता है, उस समय वह उस-भावमय (तन्मय) होता है, इसलिए धर्मपरिणत आत्मा को धर्म ही मानना चाहिए। इसी कारण-कार्य-नियम के परिणाम का प्रदर्शन '**जीवो परिणमदि जदा**' इस उत्तरगाथा में किया गया है। उसका अर्थ है—"जीव जब शुभभाव में परिणत होता है, तब शुभ होता है, जब अशुभभाव में परिणत होता है, तब अशुभ होता है और जब शुद्धभाव में परिणत होता है, तब शुद्ध होता है, क्योंकि जीव परिणाम-स्वभाववाला है।

'**धम्मेण**' और '**असुहोदयेण**' इन दो गाथाओं में शुद्ध, शुभ और अशुभ भावों में परिणत होने के फल बतलाये गये हैं कि धर्मपरिणत (मुनिव्रतधारी)[६८] आत्मा यदि शुद्धोपयोग से युक्त होता है, तो निर्वाणसुख प्राप्त करता है और शुभोपयोग से युक्त होता है, तो स्वर्ग सुख पाता है। इसके विपरीत अशुभपयोग-परिणत जीव कुमानुष, तिर्यंच या नारकी होकर निरन्तर दु:खों से पीड़ित होता हुआ दीर्घकाल तक संसरण करता है।

'**अइसयमाद**' इस गाथा में शुद्धोपयोग के बल से प्राप्त होनेवाली सिद्धावस्था के सुख का वर्णन किया गया है और '**सुविदिद**' इत्यादि गाथा में शुद्धोपयोग के लिए आवश्यक योग्यताओं का निरूपण है, जिसमें बतलाया गया है कि जो श्रमण आगम का सम्यग्ज्ञाता, संयम तप से युक्त, विगतराग तथा सुख-दु:ख में समभाव धारण करनेवाला है, उसके शुद्धोपयोग होता है।

इस प्रकार प्रवचनसार की उपर्युक्त छहों गाथाएँ वर्ण्यविषय की एकता तथा कार्य-कारणभाव एवं लक्ष्यलक्षणभाव-सम्बन्धों से परस्पर जुड़ी हुई हैं। पहली गाथा में **धम्मपरिणदो आदा** और तीसरी गाथा में **धम्मेण परिणदप्पा** इन पदों का साम्य भी उक्त गाथाओं के पारस्परिक सम्बन्ध का द्योतक है। इससे सिद्ध होता है कि उपर्युक्त छहों गाथाएँ मूलत: प्रवचनसार की हैं। **प्रवचनसार** के तृतीय अधिकार में एक निम्न-

६८. "सकलसङ्गसंन्यासात्मनि श्रामण्ये सत्यपि कषायलवावेशात् --- अर्हदादिषु ---भक्त्या वत्सलतया च प्रचलितस्य, तावन्मात्ररागप्रवर्तित-परद्रव्यप्रवृत्ति-संवलितशुद्धात्मवृत्ते:, शुभोपयोगि चारित्रं स्यात्।" तत्त्वप्रदीपिका वृत्ति / प्रवचनसार / ३ / ४६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

लिखित गाथा भी है—

समणा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता य होंति समयम्हि।
तेसु वि सुद्धुवजुत्ता अणासवा सासवा सेसा॥ ३/४५॥

इस गाथा के साथ भी उपुर्यक्त '**धम्मेण परिणदप्पा**' गाथा का शब्दगत और अर्थगत साम्य है तथा इसकी टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने भी कहा है कि 'धम्मेण परिणदप्पा' गाथा में ग्रन्थकार (प्रवचनसार के कर्त्ता) ने स्वयं कहा है कि शुभोपयोग का धर्म के साथ एकार्थसमवाय है—"**धम्मेण परिणदप्पा इति' स्वयमेव निरूपितत्वा-दस्ति तावच्छुभोपयोगस्य धर्मेण सहैकार्थ-समवायः।**" इन प्रमाणों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि '**धम्मेण परिणदप्पा**' गाथा कुन्दकुन्दकृत ही है। तिलोयपण्णत्ती में उपर्युक्त (क्रमांक २ से ५ तक की) गाथाओं का पूर्वापर गाथाओं के साथ वैसा कार्यकारणभाव एवं लक्ष्यलक्षणभाव सम्बन्ध नहीं है, जैसा प्रवचनसार की पूर्वापर गाथाओं के साथ है। अतः स्पष्ट है कि वे तिलोयपण्णत्ती की मौलिक गाथाएँ नहीं है, अपितु प्रवचनसार से लाकर रखी गई हैं।

कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से निम्नलिखित गाथाएँ भी **तिलोयपण्णत्ती** के उपर्युक्त अधिकार में आत्मसात् की गयी हैं—

१. देहो य मणो वाणी	— प्र.सा./२/६९, ति.प./९/३३।
२. णाहं पोग्गलमइओ	— प्र.सा./२/७०, ति.प./९/३४।
३. एवं णाणप्पाणं	— प्र.सा./२/१००, ति.प./९/३५।
४. परमाणुपमाणं वा[६९]	— प्र.सा./३/३९, ति.प./९/४१।
५. जस्स ण विज्जदि रागो	— पं.का./१४२, ति.प./९/२४।
६. जो सव्वसंगमुक्को	— पं.का./१५८, ति.प./९/२६।
७. पयडिट्ठिदिअणुभाग	— पं.का./७३, ति.प./९/४९।
८. तम्हा णिव्वुदिकामो[७०]	— पं.का./१७२, ति.प./९/४२।
९. केवलणाणसहावो	— नि.सा./९६, ति.प./९/५०।
१०. ण वि परिणमदि	— स.सा./७६, ति.प./९/६८।
११. जाव ण वेदि विसेसंतरं	— स.सा./६९, ति.प./९/६७।
१२. जो संकप्पवियप्पो	— स.सा./ता.वृ.पाठ/२८८, ति.प./९/६५।
१३. बंधाणं च सहावं	— स.सा./२९३, ति.प./९/६६।
१४. पडिकमणं पडिसरणं	— स.सा./३०६, ति.प./९/५३।

६९. पाठभेद : उत्तरार्ध—"विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि।" प्र.सा./३/३९।
"सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरो वि।" ति.प./९/४१।
७०. केवल गाथा के पूर्वार्ध में साम्य है।

इस प्रकार ३५ गाथाएँ कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से तिलोयपण्णत्ती में ली गई हैं।

कुन्दकुन्द ने मोक्षमार्ग एवं जीवादि तत्त्वों के प्ररूपण में जो निश्चय और व्यवहार नयों का प्रयोग किया है, उसका भी अनुकरण यतिवृषभाचार्य ने **तिलोयपण्णत्ती** में किया है। यथा—

णाणावरणप्पहुदी **णिच्छय-ववहारपाय** अतिसयए।
संजादेण अणंतं णाणेणं दंसणेण सोक्खेणं॥ १/७१॥

विरिएण तहा खाइय-सम्मत्तेणं पि दाणलाहेहिं।
भोगोपभोग-**णिच्छय-ववहारेहिं** च परिपुण्णो॥ १/७२॥

अनुवाद—"(अर्थागम के कर्त्ता भगवान् महावीर) ज्ञानावरणादि चार घाती कर्मों के निश्चय-व्यवहाररूप विनाश-हेतुओं का प्रकर्ष होने पर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य तथा क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग और क्षायिक- उपभोग इन नवलब्धियों के निश्चय-व्यवहार रूपों से परिपूर्ण हुए।"

तिलोयपण्णत्ती में कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से उपर्युक्त गाथाएँ ग्रहण किये जाने एवं वस्तुस्वरूप के निरूपण में निश्चय-व्यवहार नयों का अनुकरण किये जाने से सिद्ध है कुन्दकुन्द द्वितीय शताब्दी ई० में हुए यतिवृषभाचार्य से पूर्ववर्ती हैं।

यहाँ दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। पहली यह कि समयसार के आत्मख्याति-टीकागत पाठ में जो गाथाएँ नहीं हैं, किन्तु तात्पर्यवृत्तिगत पाठ में हैं, उनमें से तीन तिलोयपण्णत्ती में मिलती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वे यतिवृषभ के समय में समयसार की प्रतियों में उपलब्ध थीं। दूसरी यह कि **तिलोयपण्णत्ती** में जो **'पुण्णेण होइ विहवो'** गाथा (९/५६) है, वह **परमात्मप्रकाश** (२/६०) में भी है। किन्तु, सम्पूर्ण परमात्मप्रकाश अपभ्रंश-दोहों में निबद्ध है, जबकि उक्त गाथा प्राकृत में है। इससे सिद्ध होता है कि वह गाथा तिलोयपण्णत्ती से ही छठी शती ई० के परमात्मप्रकाश में पहुँची है।

५.३. तिलोयपण्णत्ती की गाथाएँ कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में नहीं

ऊपर प्रायः सर्वत्र युक्ति-प्रमाणपूर्वक यह सिद्ध किया गया है कि उपर्युक्त गाथाएँ कुन्दकुन्दकृत ही हैं, यतिवृषभकृत नहीं, अतः कुन्दकुन्द के ग्रंथों से ही तिलोयपण्णत्ती में ली गयी हैं, तिलोयपण्णत्ती से कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में नहीं। इसका एक प्रमाण यह भी है कि आचार्य यतिवृषभ ने अपनी प्रतिभा केवल **कसायपाहुड** पर **चूर्णिसूत्र** तथा **तिलोयपण्णत्ती** जैसे करणानुयोग का ग्रन्थ लिखने में ही दिखलायी है, कोई अध्यात्मग्रन्थ उनकी लेखनी से प्रसूत नहीं हुआ। तिलोयपण्णत्ती के 'सिद्धत्व-हेतु-भाव' अधिकार में भी उन्होंने 'शुभोपयोग', 'शुद्धोपयोग', 'परमार्थ', 'शुद्धात्मा', 'निश्चय',

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

'व्यवहार' आदि जैसे अध्यात्मशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों को परिभाषित नहीं किया। यह तथ्य भी इस बात की पुष्टि करता है उपर्युक्त अध्यात्मपरक गाथाएँ यतिवृषभ की नहीं हैं, अपितु कुन्दकुन्द की ही हैं। अतः कुन्दकुन्द, यतिवृषभ से पूर्ववर्ती हैं।

६
५वीं श. ई. की सर्वार्थसिद्धि में कुन्दकुन्द की गाथाएँ उद्धृत

६.१. सर्वार्थसिद्धि का रचनाकाल

पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने अनेक प्रमाणों के द्वारा सर्वार्थसिद्धिकार **देवनन्दी (पूज्यपाद स्वामी)** का समय ईसा के पाँचवी शती (४५० ई० के लगभग) निश्चित किया है। वे **स्वामी समन्तभद्र** नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—

"पूज्यपाद ने पाणिनीय व्याकरण पर **शब्दावतार** नामक न्यास लिखा था और आप गंगराजा दुर्विनीत के शिक्षागुरु (Preceptor) थे, ऐसा **हेब्बूर के ताम्रलेख**, **एपिग्रेफिया कर्णाटिका** की कुछ जिल्दों, **कर्णाटककविचरिते** और **हिस्टरी ऑफ कनडीज लिटरेचर** में पाया जाता है। साथ ही यह भी मालूम होता है कि 'दुर्विनीत' राजा का राज्यकाल ई० सन् ४८२ से ५२२ तक रहा है। इसलिए पूज्यपाद ईसवी सन् ४८२ से भी कुछ पहले के विद्वान थे, यह स्पष्ट है। डॉक्टर बूल्हर ने[७१] जो आपको ईसा की पाँचवी शताब्दी का विद्वान् लिखा है, वह ठीक ही है। पूज्यपाद के एक शिष्य वज्रनन्दी ने वि० सं० ५२६ (ई० सन् ४७०) में द्राविड संघ की स्थापना की थी, जिसका उल्लेख देवसेन के 'दर्शनसार' ग्रन्थ (वि० सं० ९९०) में मिलता है और इससे यह मालूम होता है कि पूज्यपाद 'दुर्विनीत' राजा के पिता 'अविनीत'[७२] के राज्यकाल में भी मौजूद थे, जो ई० सन् ४३० से प्रारंभ होकर ४८२ तक पाया जाता है। साथ ही, यह भी मालूम पड़ता है कि द्राविड संघ की स्थापना जब पूज्यपाद के एक शिष्य के द्वारा हुई है, तब उसकी स्थापना के समय पूज्यपाद की अवस्था अधिक नहीं तो ४० वर्ष के करीब जरूर होगी और उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना का कार्य ई० सन् ४५० के करीब प्रारम्भ किया होगा।" (स्वामी समन्तभद्र / पृ.१४२-१४३)।

पूज्यपाद देवनन्दी के ईसा की पाँचवी शताब्दी में वर्तमान होने की पुष्टि एक अन्य प्रमाण से भी होती है। **परमात्मप्रकाश** और **योगसार** नामक प्रसिद्ध अध्यात्मग्रन्थों

७१. दि इण्डियन एण्टिक्वेरी XIV, 355. (स्वामी समन्तभद्र / पादटिप्पणी / पृ. १४३)।

७२. "अविनीत राजा का एक ताम्रलेख शक सं० ३८८ (ई० सन् ४६६) का लिखा हुआ पाया जाता है, जिसे मर्करा प्लेट नं० १ कहते हैं।" स्वामी समन्तभद्र / पा.टि. / पृ. १४३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के कर्त्ता **जोइन्दुदेव** (योगीन्दुदेव) का स्थितिकाल विद्वानों ने छठी शताब्दी ई० निर्धारित किया है। इसका प्रमुख प्रमाण यह है कि सातवीं शती ई० के प्राकृत वैयाकरण **चण्ड** ने अपने **प्राकृतलक्षण** नामक व्याकरणग्रन्थ में '**यथा तथा अनयोः स्थाने**' के उदाहरण में परमात्मप्रकाश का यह दोहा उद्धृत किया है—

काल लहेविणु जोइया जिम-जिम मोहु गलेइ।
तिमु-तिमु दंसणु लहइ जिउ णिय मैं अप्पु मुणेइ॥ १/८५॥[७३]

अनुवाद—"हे योगी! काल पाकर ज्यों-ज्यों मोह विगलित होता है, त्यों-त्यों जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, पश्चात् नियम से आत्मस्वरूप को जानता है।"

जोइन्दुदेव आचार्य कुन्दकुन्द के अतिरिक्त पूज्यपाद देवनन्दी से भी अत्यधिक प्रभावित हैं। उन्होंने पूज्यपाद के प्रसिद्ध अध्यात्मग्रन्थ **समाधितन्त्र** के भी अनेक पद्य अपभ्रंश में रूपान्तरित कर परमात्मप्रकाश में समाविष्ट किये हैं। यथा—

१

यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः॥ ३१॥ स.तन्त्र।

जो परमप्पा णाणमउ सो हउँ देउ अणंतु।
जो हउँ सो परमप्पु परु एहउ भावि णिभंतु॥ २/१७५॥प.प्र.।

२

जीर्णे वस्त्रे यथात्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।
जीर्णे स्वदेहेऽप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः॥ ६४॥ स.तन्त्र।

जिण्णिं वत्थिं जेम बुहु देहु ण मण्णइ जिण्णु।
देहिं जिण्णिं णाणि तहँ अप्पु ण मण्णइ जिण्णु॥ २/१७९॥ प.प्र.।

३

नष्टे वस्त्रे यथात्मानं न नष्टं मन्यते तथा।
नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मानं न नष्टं मन्यते बुधः॥ ६५॥ स.तन्त्र।

वत्थु पणट्ठइ जेम बुहु देहु ण मण्णइ णट्ठु।
णट्ठे देहे णाणि तहँ अप्पु ण मण्णइ णट्ठु॥ २/१८०॥ प.प्र.।

---

७३. देखिए, परमात्मप्रकाश / इण्ट्रोडक्शन : ए. एन. उपाध्ये / पृ.७५ तथा 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' / खण्ड २ / पृ.२ पृ. २४६-२४८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

४

रक्ते वस्त्रे यथात्मानं न रक्तं मन्यते तथा।
रक्ते स्वदेहेऽप्यात्मानं न रक्तं मन्यते बुधः॥ ६६॥ स.तन्त्र।

रत्तेँ वत्थेँ जेम बुहु देहु ण मण्णइ रत्तु।
देहिं रत्तिं णाणि तहँ अप्पु ण मण्णइ रत्तु॥ २/१७८॥ प.प्र.।

डॉ० ए० एन० उपाध्ये **परमात्मप्रकाश** की प्रस्तावना (Introduction) में पृष्ठ ३० पर लिखते हैं—"Turning to Samādhiśataka of Pūjyapāda, P.-Prakāśa agrees with it very closely, and I feel no doubt that yōgīndu has almost verbally followed that model." अर्थात् "पूज्यपाद के **समाधिशतक** से **परमात्म-प्रकाश** का घनिष्ठ साम्य है और इसमें सन्देह नहीं कि योगीन्दु ने उसका अक्षरशः अनुसरण किया है।" डॉ० उपाध्ये ने समाधिशतक और परमात्मप्रकाश के उन पद्यों के क्रमांक भी दर्शाये हैं, जिनमें अक्षरशः साम्य दृष्टिगोचर होता है। डॉ. उपाध्ये आगे लिखते हैं—"There are many common ideas besides these close agreements." (Introduction, p.30)। अर्थात् "इस पद्यगत घनिष्ठ साम्य के अतिरिक्त पूज्यपाद और योगीन्दु के अनेक विचारों में भी साम्य है।"

छठी शती ई० के परमात्मप्रकाश में पूज्यपाद-स्वामी-कृत समाधिशतक (समाधि-तन्त्र) के पद्यों की उपलब्धि इस तथ्य की पुष्टि करती है कि पूज्यपाद देवनन्दी का स्थितिकाल पाँचवी शती ई० से नीचे नहीं जा सकता।

सुप्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् पं० सुखलाल जी संघवी भी पूज्यपाद के इस काल-निर्धारण से सहमत हैं, यह उनके निम्नलिखित वक्तव्य से ज्ञात होता है—

"स्वोपज्ञ माने जानेवाले भाष्य को यदि अलग किया जाय, तो तत्त्वार्थसूत्र पर जो सीधी टीकाएँ इस समय उपलब्ध हैं, उन सब में पूज्यपाद की 'सर्वार्थसिद्धि' प्राचीन है। पूज्यपाद का समय विद्वानों ने विक्रम की पाँचवीं-छठीं शताब्दी निर्धारित किया है, इससे सूत्रकार वा० उमास्वाति विक्रम की पाँचवीं शताब्दी से पहले किसी समय हुए हैं, ऐसा कह सकते हैं।"[७४]

इस प्रकार आचार्य देवनन्दी (पूज्यपाद स्वामी) का सर्वमान्य समय ४५० ई० के लगभग है। अतः सर्वार्थसिद्धि का रचनाकाल भी यही है।

---

७४. 'तत्त्वार्थसूत्र के प्रणेता उमास्वाति'/'अनेकान्त'/वर्ष १/किरण ६-७/वि.सं. १९८७, वीर नि. सं. २४५६/पृष्ठ ३९०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

६.२. सर्वार्थसिद्धि में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण

पाँचवी शताब्दी ई० की **सर्वार्थसिद्धि** में पूज्यपाद स्वामी ने कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से अनेक गाथाएँ '**उक्तं च**' कहकर उद्धृत की हैं। '**संसारिणो मुक्ताश्च**' (२/१०) सूत्र की टीका में **बारस अणुवेक्खा** की निम्नलिखित पाँच गाथाएँ '**उक्तं च**' निर्देश के साथ उद्धृत की गई हैं—

सव्वे वि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण।
असइं अणंतखुत्तो पुग्गल-परिय-ट्टसंसारे॥ २५॥

सव्वम्हि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पणं।
ओगाहणाए बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे॥ २६॥

उस्सप्पिणि-अवसप्पिणि-समयावलियासु णिरवसेसासु।
जादो मुदो य बहुसो भमणेण दु कालसंसारे॥ २७॥

णिरयादिजहण्णादिसु जाव दु उवरिल्लया दु गेवज्जा।
मिच्छत्तसंसिदेण दु बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदा॥ २८॥

सव्वा पयडिट्ठिदीओ अणुभाग-पदेस-बंधठाणाणि।
मिच्छत्तसंसिदेण य भमिदा पुण भावसंसारे॥ २९॥

ये पाँचों गाथाएँ जिस क्रम से उद्धृत की गई हैं, उसी क्रम से कुन्दकुन्द की बारस-अणुवेक्खा में विद्यमान हैं तथा किसी अन्य प्राचीन ग्रन्थ में नहीं पायी जातीं। अतः यह निश्चित है कि पूज्यपाद ने ये कुन्दकुन्द की बारस-अणुवेक्खा से उद्धृत की हैं।

बारस-अणुवेक्खा की निम्नलिखित गाथा (३५) भी '**सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः**' (२/३२) सूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में उद्धरण के रूप में प्राप्त होती है—

णिच्चिदरधादु सत्त य तरु दस वियलिंदिएसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरिय चउरो चोद्दस मणुए सदसहस्सा॥ ३५॥

"**प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा**" (७/१३) इस सूत्र की व्याख्या करते हुए **प्रवचनसार** की नीचे दर्शायी गयी गाथाएँ '**उक्तं च**' कहकर सर्वार्थसिद्धि में उद्धृत की गयी हैं—

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदस्स॥ ३/१७॥

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उच्चालिदम्हि पादे इरियासमिदस्स णिग्गमट्ठाणे।
आबादे (धे) ज्ज कुलिंगो मरेज्ज तज्जोगमासेज्ज॥ ३ / १७.१॥

ण हि तस्स तण्णिमित्तो बंधो सुहुमो वि देसिदो समए।
मुच्छापरिग्गहो त्ति य अज्झप्पपमाणदो भणिदो॥ ३ / १७.२॥
(ये दोनों गाथाएँ तात्पर्यवृत्ति-पाठ में हैं।)

'**एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम्**' (५/१४) सूत्र की टीका में पूज्यपाद स्वामी ने 'एक स्थान में अनन्तानन्त पुद्गलों का अवगाह संभव है' इस तथ्य की पुष्टि के लिए '**पञ्चास्तिकाय**' की '**ओगाढगाढणिचिओ**' गाथा आगमप्रमाण के रूप में प्रस्तुत की है, यह पूर्व (शीर्षक ३.३) में बतलाया जा चुका है। यह पंचास्तिकाय की ६४वीं गाथा है। प्रवचनसार के द्वितीय अधिकार में भी यह कुछ परिवर्तन के साथ ७६ वें क्रमांक पर कथित है।

'**प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत्**' (५/१६) सूत्र का अर्थ स्पष्ट करते हुए 'धर्मादि द्रव्यों का परस्पर प्रवेश होने पर भी वे अपना स्वभाव नहीं छोड़ते, इसलिए उनमें अभेद नहीं होता' इस नियम की पुष्टि पूज्यपाद स्वामी ने पंचास्तिकाय की निम्नलिखित सातवीं गाथा सर्वार्थसिद्धि में '**उक्तं च**' वचन के साथ उद्धृत करके की है—

अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सगसब्भावं ण जहंति॥ ७॥

उन्होंने '**अणवः स्कन्धाश्च**' (५ / २५) सूत्र के अन्तर्गत 'अणु' को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'जिसका आदि भी वही होता है, मध्य भी वही होता है और अन्त भी वही होता है, उसे अणु कहते हैं' और इसकी पुष्टि के लिए उन्होंने सर्वार्थसिद्धि में **नियमसार** की निम्नलिखित गाथा (२६) '**उक्तं च**' कहकर प्रमाणरूप में प्रस्तुत की है—

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदिये गेज्झं।
जं दव्वं अविभागी तं परमाणुं विआणाहि॥ २६॥

इस प्रकार पूज्यपाद देवनन्दी ने कुन्दकुन्द के ग्रन्थों को आगम के रूप में स्वीकार किया है और उनके वचनों को प्रमाणरूप में प्रस्तुत कर अपने कथन की पुष्टि की है। पूज्यपाद द्वारा कुन्दकुन्द के ग्रन्थों को आगमरूप में स्वीकार किये जाने से सिद्ध होता है कि उनके समय में कुन्दकुन्द के ग्रन्थों को आगम का दर्जा प्राप्त था, और इस दर्जे की प्राप्ति कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के सुदीर्घ अस्तित्व के बिना संभव नहीं है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अतः सर्वार्थसिद्धि में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उद्धृत किये जाने से न केवल वे पूज्यपाद स्वामी से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं, अपितु उनके वचनों को पूज्यपाद द्वारा आगमरूप में स्वीकार किये जाने से वे उनसे सैकड़ों वर्ष प्राचीन भी सिद्ध होते हैं।

६.३. समाधितन्त्र-इष्टोपदेश में कुन्दकुन्द की गाथाओं का संस्कृतीकरण

पूज्यपाद स्वामी की दृष्टि में कुन्दकुन्द न केवल एक आप्तपुरुष थे, अपितु वे उनके अध्यात्मवाद से भी अत्यधिक प्रभावित थे। इसीलिए उन्होंने कुन्दकुन्द के **मोक्खपाहुड, भावपाहुड** आदि ग्रन्थों की अनेक आध्यात्मिक गाथाओं को संस्कृत में रूपान्तरित कर अपने **समाधितन्त्र** और **इष्टोपदेश** में समाविष्ट किया है। यथा—

१

जं मया दिस्सदे रूवं तण्ण जाणादि सव्वहा।
जाणगं दिस्सदे णंत तम्हा ज पेमि केण हं॥ २९॥ मो.पा.।

यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम्॥ १९॥ स.तन्त्र।

२

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे॥ ३१॥ मो.पा.।

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन्सुषुप्तश्चात्मगोचरे॥ ७८॥ स.तन्त्र।

३

सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहाबलं जोई अप्पा दुक्खेहि भावए॥ ६२॥ मो.पा.।

अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः॥ १०२॥ स.तन्त्र।

४

वर वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं॥ २५॥ मो.पा.।

वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्वत नारकम्।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्॥ ३॥ इष्टो.।

५

एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥ ५९॥ भा.पा.।

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा॥ २७॥ इष्टो.।

समाधितन्त्र के कुछ श्लोक कुन्दकुन्द की गाथाओं में किञ्चित् परिवर्तन कर रचे गये हैं। यथा—

१

णियदेहसरित्थं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण।
अच्चेयणं पि गहियं झाइज्जइ परमभाएण॥ ९॥ मो.पा.।

स्वदेहसदृशं दृष्ट्वा परदेहमचेतनम्।
परात्माधिष्ठितं मूढः परत्वेनाध्यवस्यति॥ १०॥ स.तन्त्र।

२

सपरज्झवसाएणं देहेसु य अविदितत्थमप्पाणं।
सुयदाराईविसए मणुयाणं वड्ढए मोहो॥ १०॥ मो.पा.।

स्वपराध्यवसायेन देहेष्वविदितात्मनाम्।
वर्तते विभ्रमः पुंसां पुत्रभार्यादिगोचरः॥ ११॥ स.तन्त्र।

यह आचार्य कुन्दकुन्द के पाँचवीं शती ई० के पूज्यपाद स्वामी से पूर्ववर्ती होने का एक अन्य प्रमाण है।

६.४. कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में पूज्यपाद के ग्रन्थों की सामग्री नहीं

पूर्व में इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है कि पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि में कुन्दकुन्द की जिन गाथाओं को प्रमाणरूप में उद्धृत किया है, उन्हें उद्धृत करने के पहले '**उक्तं च**' शब्दों का प्रयोग कर यह स्पष्ट कर दिया है कि वे पूज्यपाद की स्वरचित गाथाएँ नहीं हैं, अपितु अन्यत्र से ग्रहण की गई हैं। और वे गाथाएँ कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य किसी भी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होतीं, इससे सिद्ध है कि वे कुन्दकुन्द के ही ग्रन्थों से ग्रहण की गयी हैं। इस प्रकार जब पूज्यपाद स्वामी से कुन्दकुन्द पूर्ववर्ती सिद्ध हो जाते हैं, तब यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि **समाधितन्त्र** और **इष्टोपदेश** में जो पद्य कुन्दकुन्द की गाथाओं से साम्य रखते हैं, वे कुन्दकुन्द की ही गाथाओं के संस्कृत-रूपान्तर हैं। ऐसा नहीं है कि पूज्यपाद के पद्यों को प्राकृत में रूपान्तरित कर कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थों में समाविष्ट किया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

७

६ वीं श. ई. के परमात्मप्रकाश में कुन्दकुन्द का अनुकरण

परमात्मप्रकाश और **योगसार** के कर्त्ता जोइन्दुदेव छठी शताब्दी ई० में हुए थे। इसका प्रमाण पूर्व में सर्वार्थसिद्धिकार पूज्यपाद स्वामी के काल-निर्धारण-प्रसंग में उद्धृत किया जा चुका है। जोइन्दुदेव ने कुन्दकुन्द के विचारों, शब्दों और शैली का परमात्मप्रकाश एवं योगसार में प्रचुरतया अनुकरण किया है। यथा—

७.१. निश्चय-व्यवहारनयों से आत्मादि का प्ररूपण

जसु परमत्थे बंधु णवि जोइय ण वि संसारु।
सो परमप्पउ जाणि तुहुँ मणि मिल्लि वि ववहारु॥ १/४६॥ प.प्र.।

अनुवाद—"हे योगी! जिस परमात्मा के निश्चयनय से न बन्ध है, न संसार, उसका समस्त व्यवहार को छोड़कर मन में ध्यान कर।

जो तइलोयहँ झेउ जिणु सो अप्पा णिरु बुत्तु।
णिच्छयणइँ एमइ भणिउ एहउ जाणि णिभंतु॥ २८॥ यो.सा.।

अनुवाद—"जो 'जिन' तीनों लोकों के ध्येय हैं, उन्हें ही आत्मा कहा गया है, यह निश्चयनय का कथन है। इसमें शंका नहीं करनी चाहिए।"

मग्गण-गुण-ठाणइ कहिया विवहारेण वि दिट्ठि।
णिच्छयणइँ अप्पा मुणहि जिम पावहु परमेट्ठि॥ १७॥ यो.सा.।

अनुवाद—"मार्गणाओं और गुणस्थानों का कथन व्यवहारनय से किया गया है। निश्चयनय से तू आत्मा को ही जान, जिससे तुझे परमेष्ठिपद प्राप्त हो सके।"

ये उक्तियाँ कुन्दकुन्द के निम्नलिखित वचनों का अनुसरण करती हैं—

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवइ कम्मं॥ १४१॥ स.सा.।

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी।
तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं॥ १५१॥ स.सा.।

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स॥ ५६॥ स.सा.।

७.२. निश्चयनय से आत्मा के वर्णरागादि-रहितत्व का प्रतिपादन

परमात्मप्रकाश के निम्नलिखित दो दोहे द्रष्टव्य हैं—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जासु ण वण्णु ण गंधु रसु जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु ण वि णाउ णिरंजणु तासु॥ १/१९॥

जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय ण माणु।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय सो जि णिरंजणु जाणु॥ १/२०॥

अनुवाद—"जिसमें न वर्ण है, न गंध, न रस, न शब्द, न स्पर्श, जिसका न जन्म होता है, न मरण, उसी का नाम निरंजन (शुद्धात्मा) है।"(१/१९)।

"जिसमें न क्रोध है, न मोह, न मद, न माया, न मान, जिसके न ध्यान के स्थान हैं, न ध्यान, हे जीव! उसे ही निरंजन (परमात्मा) समझ।"(१/२०)।

परमात्मप्रकाश के उपर्युक्त दोहों में आचार्य कुन्दकुन्दकृत **समयसार** की निम्नलिखित गाथाएँ स्पष्टतया प्रतिबिम्बत हो रही हैं—

जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो।
ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं॥ ५०॥

जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि॥ ५१॥

७.३. निश्चयनय से आत्मा के कर्म-अकर्तृत्व का प्रतिपादन

बंधु वि मोक्खु वि सयलु जिय जीवहँ कम्मु जणेइ।
अप्पा किंपि वि कुणइ णवि णिच्छउ एउँ भणेइ॥ १/६५॥ प.प्र.।

अनुवाद—"हे जीव! जीव के बन्ध और मोक्ष, सभी का कर्त्ता 'कर्म' है, आत्मा कुछ नहीं करता, ऐसा निश्चयनय का कथन है।"

पर.प्र. की यह उक्ति आचार्य कुन्दकुन्द की अधस्तन गाथा पर आधारित है—

णवि कुव्वइ णवि वेयइ णाणी कम्माइं बहुपयाराइं।
जाणइ पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च॥ ३१९॥ स.सा.।

अनुवाद—"ज्ञानी विभिन्न प्रकार के कर्मों का न तो कर्त्ता है, न भोक्ता, केवल कर्मों के बन्ध, फल और पुण्य-पाप का ज्ञाता है।"

७.४. निश्चयनय से सुख-दुःख के कर्मकृत होने का प्रतिपादन

दुक्खु वि सुक्खु वि बहुविहउ जीवहँ कम्मु जणेइ।
अप्पा देक्खइ मुणइ पर णिच्छउ एउँ भणेइ॥ १/६४॥ प.प्र.।

अनुवाद—"जीवों में अनेक प्रकार के सुख-दुःख कर्म ही उत्पन्न करता है, आत्मा केवल देखता और जानता है, ऐसा निश्चयनय कहता है।"

यह दोहा **समयसार** की निम्नलिखित गाथा से प्रभावित है—

कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे।
कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिदसुहिदा कहं कया ते॥ २५४॥ स.सा.।

अनुवाद—"यदि सभी जीव कर्मोदय से दुःखी-सुखी होते हैं, तो तुम उन्हें कर्म तो (कहीं से लाकर) देते नहीं हो, (कर्मों के बन्धन में तो बाँधते नहीं हो), तब उन्हें दुःखी-सुखी कैसे कर सकते हो?"

७.५. शुभ, अशुभ, शुद्ध भाव का प्ररूपण

सुहपरिणामें धम्मु पर असुहें होइ अहम्मु।
दोहिँ वि एहिँ विवज्जियउ सुद्धु ण बंधइ कम्मु॥ २/७१॥ प.प्र.।

अनुवाद—"शुभ परिणाम से पुण्यबन्ध होता है और अशुभ परिमाण से पापबन्ध। इन दोनों से रहित शुद्ध परिणाम कर्मों का बन्ध नहीं करता।"

भाउ विसुद्धउ अप्पणउ धम्मु भणेविणु लेहु।
चउ-गइ-दुक्खहँ जो धरइ जीउ पडंतउ एहु॥ २/६८॥ प.प्र.।

अनुवाद—"अपने विशुद्धभाव को ही धर्म समझकर ग्रहण करो। वही चतुर्गति के दुःखों में गिरते हुए जीव को सँभालता है।"

परमात्मप्रकाश के उपर्युक्त दोहे प्रवचनसार की अधोलिखित गाथाओं के गर्भ से प्रकट हुए हैं—

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं॥ १/११॥

असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।
दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिंधुदो भमदि अच्चंतं॥ १/१२॥

अनुवाद—"धर्मपरिणत आत्मा यदि शुद्धोपयोग-युक्त होता है, तो निर्वाणसुख प्राप्त करता है, और शुभोपयोग-युक्त होता है, तो स्वर्गसुख।"(१/११)।

अशुभोपयोग से ग्रस्त होने पर कुनर, तिर्यंच और नारकी होकर दुःखसहस्र से पीड़ित होता हुआ संसार में भटकता रहता है।"(१/१२)।

७.६. आत्मा के बहिरात्मादि-भेदत्रय का निरूपण

मूढु वियक्खणु बंभु परु अप्पा ति-विहु हवेइ।
देहु जि अप्पा जो मुणइ सो जणु मूढु हवेइ॥ १/१३॥ प.प्र.।

अनुवाद—"आत्मा मूढ़ (बहिरात्मा), विचक्षण (अन्तरात्मा) और ब्रह्म (परमात्मा), इस तरह तीन प्रकार का है। इनमें जो देह को ही आत्मा मानता है वह मूढ़ (बहिरात्मा) कहलाता है।"

ति-पयारो अप्पा मुणहि परु अंतरु बहिरप्पु।
पर जायहि अंतरसहिउ बाहिरु चयहि णिभंतु॥ ६॥ यो.सा.।

अनुवाद—"आत्मा के तीन प्रकार हैं : परमात्मा (परु), अन्तरात्मा (अंतरु) और बहिरात्मा। अन्तरात्मा-सहित होकर परमात्मा (पर) का ध्यानकर (जायहि), भ्रान्तिरहित हो (णिभंतु=निर्भ्रान्तम्) बहिरात्मा का त्याग करो।"

ये दोहे आचार्य कुन्दकुन्द की निम्नलिखित गाथाओं के आधार पर रचे गये हैं—

तिपयारो सो अप्पा पर-भिंतरबाहिरो दु हेऊणं।
तत्थ परो झाइज्जह अंतोवाएण चयहि बहिरप्पा॥ ४॥ मो. पा.।

अनुवाद—"आत्मा परमात्मा, अभ्यन्तरात्मा और बहिरात्मा के भेद से तीन प्रकार का है। इनमें से बहिरात्मा को छोड़कर अन्तरात्मा के उपाय से परमात्मा का ध्यान किया जाता है। हे योगी! तुम बहिरात्मा का त्याग करो।"

अक्खाणि बाहिरप्पा अंतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो।
कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भण्णए देवो॥ ५॥ मो. पा.।

अनुवाद—"इन्द्रियाँ (इन्द्रियोन्मुख आत्मा) बहिरात्मा हैं, आत्मसंकल्प (आत्मोन्मुख आत्मा) अन्तरात्मा है और कर्मकलंकरहित आत्मा परमात्मा है। परमात्मा ही देव कहलाता है।"

आरुहवि अंतरप्पा बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा उवइट्ठं जिणवरिंदेहि॥ ७॥ मो. पा.।

अनुवाद—"मन, वचन, काय, इन तीन योगों से बहिरात्मा को छोड़कर अन्तरात्मा पर आरूढ़ हो, परमात्मा का ध्यान किया जाता है, यह जिनेन्द्रदेव का उपदेश है।"

७.७. कुन्दकुन्द की गाथाओं का अपभ्रंशीकरण

निम्नलिखित दोहों में तो जोइन्दुदेव ने कुन्दकुन्द की गाथाओं को किञ्चित् शाब्दिक हेर-फेर के साथ ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है। तुलना के लिए प्रत्येक दोहे के नीचे कुन्दकुन्द की गाथा प्रस्तुत की जा रही है—

१

जीवहँ मोक्खहँ हेउ वरु दंसणु णाणु चरित्तु।
ते पुणु तिण्णि वि अप्पु मुणि णिच्छएँ एहउ वुत्तु॥२/१२॥ प.प्र.।

अनुवाद—"जीवों के मोक्ष का कारण सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र हैं और उन तीनों को आत्मा ही समझना चाहिये, ऐसा निश्चयनय का कथन है।"

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥ १६॥ स.सा.।

अनुवाद—"साधु को सदा सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की उपासना करनी चाहिए और तीनों को निश्चयनय से आत्मा ही मानना चाहिए।"

२

अण्णु जि दंसणु अत्थि ण वि अण्णु जि अत्थि ण णाणु।
अण्णु जि चरणु ण अत्थि जिय मेल्लिवि अप्पा जाणु॥ १/९४॥ प.प्र.।

अनुवाद—"हे जीव! तू ऐसा जान कि आत्मा को छोड़कर न तो अन्य कोई दर्शन है, न अन्य कोई ज्ञान है, न अन्य कोई चारित्र है (अर्थात् आत्मा ही दर्शनज्ञानचारित्रमय है)।"

ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो॥ ७॥ स.सा.।

अनुवाद—"व्यवहारनय से ऐसा उपदेश दिया जाता है कि जीव में दर्शन, ज्ञान और चारित्र हैं। निश्चयनय से जीव में न दर्शन है, न ज्ञान है, न चारित्र, जीव शुद्ध (एकमात्र) ज्ञायकभाव है।"

३

जह लोहम्मिय णियड बुह तह सुण्णम्मिय जाणि।
जे सुहु असुह परिच्चयहिँ ते वि हवंति हु णाणि॥ ७२॥ यो.सा.।

अनुवाद—"हे पण्डित! जैसे लोहे की साँकल को तू साँकल समझता है, वैसे ही सोने की साँकल को भी साँकल समझ। जो शुभ और अशुभ दोनों भावों का परित्याग कर देते हैं, वे ही निश्चय से ज्ञानी होते हैं।"

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं॥ १४६॥ स.सा.।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"जैसे पुरुष को लोहे की बेड़ी भी बाँधती है, और सुवर्ण की बेड़ी भी, वैसे ही जीव के लिए शुभकर्म भी बन्ध का कारण है और अशुभ कर्म भी।"

४

एहु ववहारें जीवडउ हेउ लहेविणु कम्मु।
बहुविहभावें परिणवइ तेण जि धम्मु अहम्मु॥ १/६०॥ प.प्र.।

अनुवाद—"व्यवहारनय की अपेक्षा जीव कर्मों का निमित्त पाकर अनेकरूप से परिणमन करता है। इसी से पाप और पुण्य होते हैं।"

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमइ॥ ८०॥ स.सा.।

अनुवाद—"जीव के (शुभाशुभ) परिणामों के निमित्त से पुद्गलद्रव्य कर्मरूप में परिणमित हो जाता है। इसी प्रकार पुद्गलकर्मों के उदय के निमित्त से जीव भी (शुभाशुभभाव-रूप में) परिणमित हो जाता है।"

इसी प्रकार शीर्षक ७.२ में उद्धृत '**जासु ण वण्णु**' (प.प्र.१ / १९-२१) तथा '**जीवस्स णत्थि वण्णो**' (स.सा. ५०-५५) आदि दोहों और गाथाओं में भी पर्याप्त आकृति-साम्य है। मोक्खपाहुड की '**जह फलिहमणि**' इस ५१वीं गाथा के भाव को जोइन्दुदेव ने परमात्मप्रकाश (अधिकार २) के '**णिम्मलफलिहहँ**' इत्यादि दोहों (१७६, १७७) में उतारा है। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि की परिभाषाएँ भी परमात्मप्रकाश (१ / ७६-७७) और मोक्खपाहुड (१४-१५) में समान हैं। परमात्मप्रकाश के टीकाकार ब्रह्मदेव ने ७६ वें और ७७ वें दोहों की टीका में उक्त गाथाएँ उद्धृत की हैं।

छठी शती ई० के **परमात्मप्रकाश** एवं **योगसार** में कुन्दकुन्द के विचारों, शब्दों, शैली और गाथाओं का यह प्रचुर अनुकरण इस तथ्य का ठोस प्रमाण है कि आचार्य कुन्दकुन्द छठी शताब्दी ई० से पूर्ववर्ती थे।

८

७ वीं श. ई. के वरांगचरित में कुन्दकुन्द की गाथाओं का संस्कृतीकरण

वरांगचरित के कर्त्ता **जटासिंहनन्दी** का समय सातवीं शती ई० प्रायः सर्वमान्य है। उन्होंने कुन्दकुन्द की कतिपय गाथाओं को संस्कृत-रूपान्तर के साथ 'वरांगचरित' में सन्निविष्ट किया है। यथा—

१

नियमसार — एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥ १०२॥

वरांगचरित — एकस्तु मे शाश्वतिकः स आत्मा सद्दृष्टिसज्ज्ञानगुणैरुपेतः।
शेषाश्च मे बाह्यतमाश्चभावाः संयोगसल्लक्षणलक्षितास्ते॥ ३१/१०१॥

२

नियमसार — सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि।
आसाए वोसरित्ता णं समाहिं पडिवज्जए॥ १०४॥

वरांगचरित — सर्वेषु भूतेषु मनः समं मे वैरं न मे केनचिदस्ति किञ्चित्।
आशां पुनः क्लेशसहस्रमूलां हित्वा समाधिं लघु सम्प्रपद्ये॥ ३१/१०३॥

३

समयसार — भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥ १३॥

वरांगचरित — जीवादयो मोक्षपदावसाना भूतार्थतो येऽधिगता पदार्थाः।
नयप्रमाणानुगतक्रमेण सम्यक्त्वसंज्ञामिह ते लभन्ते॥ ३१/६८॥

इससे सिद्ध होता है कि कुन्दकुन्द सातवीं शती ई० के वरांगचरितकार जटासिंह-नन्दी से पूर्ववर्ती हैं। **वरांगचरित** में **भगवती-आराधना** एवं **मूलाचार** की निम्नलिखित गाथाएँ भी संस्कृत में उपलब्ध होती हैं—

१

भग.आरा. — दंसणभट्टो भट्टो ण हु भट्टो होइ चरणभट्टो हु।
दंसणममुयत्तस्स हु परिवडणं णत्थि संसारे॥ ७३८॥

वरांगचरित — दर्शनाद् भ्रष्ट एवानुभ्रष्ट इत्यभिधीयते।
न हि चारित्रविभ्रष्टो भ्रष्ट इत्युच्यते बुधैः॥ २६/९६॥

मूलाचार — संजोयमूलं जीवेण पत्तं दुक्खपरंपरं।
तम्हा संजोयसंबंधं सव्वं तिविहेण वोसरे॥ ४९॥

वरांगचरित — संयोगतो दोषमवाप जीवः परस्परं नैकविधानुबन्धि।
तस्माद्विसंयोगमतो दुरन्तमाजीवितान्तादहमुत्सृजामि॥ ३१/१०२॥

इन उदाहरणों से यह साबित होता है कि **भगवती-आराधना** और **मूलाचार** भी **वरांगचरित** (सातवीं शती ई०) से प्राचीन हैं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

डॉ० सागरमल जी ने '**दंसणभट्ठो भट्ठो**' गाथा **भक्तपरिज्ञा** की तथा '**एगो मे सासओ**', '**संजोयमूलं**' एवं '**सम्मं मे सव्वभूदेसु**', ये गाथाएँ **आतुरप्रत्याख्यान** की मौलिक गाथाएँ बतलायी हैं।[७५] किन्तु भक्तपरिज्ञा और आतुरप्रत्याख्यान को स्वयं डॉक्टर सा० ने ११ वीं शताब्दी ई० में रचित कहा है।[७६] यद्यपि उन्होंने ५ वीं शती ई० के **नन्दीसूत्र** में उल्लिखित **आतुरप्रत्याख्यान** को प्राचीन माना है, किन्तु उसका विच्छेद हो चुका है। अर्थात् नन्दीसूत्र में विच्छिन्न आतुरप्रत्याख्यान का नाममात्र दिया गया है। अतः वर्तमान में जो आतुरप्रत्याख्यान उपलब्ध है, वह ११ वीं शती ई० के **वीरभद्र** द्वारा ही रचित है। (देखिये, अध्याय १३ / प्रकरण ३ / शीर्षक ७.२)। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उक्त गाथाएँ इन ग्रंथों से सातवीं शताब्दी ई० के **वरांगचरित** में नहीं आ सकतीं। अतः वे ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी के कुन्दकुन्दसाहित्य तथा प्रथम शताब्दी ई० के भगवती-आराधना और मूलाचार से ही वरांगचरित में पहुँची हैं, और वहीं से उन्हें श्वेताम्बरीय **भक्तपरिज्ञा** और **आतुरप्रत्याख्यान** में प्राप्त किया गया है।

९

८ वीं श. ई. की विजयोदयाटीका में कुन्दकुन्द की गाथाएँ

९.१. 'विजयोदया' का रचनाकाल

भगवती-आराधना के टीकाकार अपराजित सूरि आठवीं शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में हुए थे। पं० नाथूराम जी प्रेमी ने उन्हें अनुमानतः विक्रम की नौवीं शताब्दी के पहले और छठी शताब्दी के बाद का बतलाया है। यह युक्तिसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि विजयोदया में समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, बारस-अणुवेक्खा, मूलाचार, स्वयम्भूस्तोत्र, वरांगचरित, तत्त्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, प्राकृतपञ्चसंग्रह, दशवैकालिकसूत्र, आवश्यकसूत्र (श्वेता.), आचारांग (श्वेता.), उत्तराध्ययन (श्वेता.) और भर्तृहरि-शृंगारशतक से उद्धरण दिये गये हैं। इनमें अर्वाचीनतम उद्धरण वरांगचरित का है,

---

७५. जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय / पृ.१९२-१९३।

७६. डॉक्टर सा० ने अपने एक लेख में लिखा है—"प्रकीर्णकों में निम्नलिखित प्रकीर्णक वीरभद्र की रचना कहे जाते हैं—चउसरण, आउरपच्चक्खाण, भत्तपरिण्णा और आराधनापताका। आराधनापताका की प्रशस्ति में 'विक्कमनिवकालाओ अट्ठुत्तरिमे-समासहसम्मि' या पाठभेद से 'अट्ठभेद से समासहस्समि' के उल्लेख के अनुसार इनका रचनाकाल ई० सन् १००८ या १०७८ सिद्ध होता है।" (आराधनापताका : आचार्य वीरभद्र/गाथा ९८७)। डॉक्टर सा० आगे लिखते हैं-"-- वीरभद्ररचित आउरपच्चक्खाण परवर्ती ही है, किन्तु नन्दीसूत्र में उल्लिखित आउरपच्चक्खाण तो प्राचीन ही है।" डॉक्टर सागरमल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ / खण्ड २ / पृ. ४४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in